अुर्दूके अदीब

(अुर्दू साहित्यिकोंका संक्षिप्त परिचय)

आलोचना व निबन्ध

लेखक
श्रीपाद जोशी

दीबाचा
आचार्य श्री काकासाहब कालेलकर

बोरा अेन्ड कंपनी, पब्लिशर्स, लिमिटेड
३. राअुंड बील्डींग, कालबादेवी रोड, बंबअी २.

पहला संस्करण, ऑक्टोबर, १९४६

क़िमत रु. १—८—०

सप्रेम समर्पित

अपने अुन विद्यार्थी-मित्रोंको जिनके लिये यह किताब लिखी गयी थी।

लेखक

मज़मूनोंकी फ़ेहरिश्त

परिचयका परिचय

अुर्दू साहित्यका अितिहास अुर्दूमें तो पढ़नेको मिलता ही है। अंग्रेजीमें भी मिलता है। लेकिन मैं नहीं मानता कि बँगला, तमिल या मराठीमें अुर्दू साहित्यका अितिहास मिलता हो। जब कुछ जानकारीकी जरूरत होती है तब हम अंग्रेज़ीके पास दौड़ते हैं। हिन्दुस्तानको पहचाननेके लिये हमें अंग्रेज़ोंके पुरुषार्थका सहारा लेना पड़े, यह सचमुच शर्मकी बात है।

हिन्दी और अुर्दू यह दो भाषाअें या शैलियां अेक दूसरीसे अितनी नजदीक़ हैं कि दोनोंके साहित्योंकी जानकारी अेक साथ रहना स्वाभाविक-सी बात होनी चाहिये थी। लेकिन अिन दोनोंके बीच कुछ प्रतिद्वन्द्विता-सी हो गयी है। मुझे मालूम नहीं कि अुर्दूमें हिन्दी साहित्यका अितिहास पाया जाता है या नहीं। हिन्दीमें भी अुर्दू साहित्यकी अेक दो रूपरेखाओंको छोड़कर कोअी विशेष ग्रंथ हो तो अुसके बारेमें मैंने नहीं सुना है। जो अुर्दू हिन्दुस्तानमें ही पैदा हुअी है, जिसने कुछ समय तक राजभाषाका काम किया, जिसका असर हिन्दुस्तानकी अनेक भाषाओं पर कमोबेश पाया जाता है और जिसके बनानेमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंका हाथ है, अुस भाषाके साहित्यका अितिहास हम न जानें, यह हमारी सांस्कृतिक राष्ट्रीयताके लिये शोभादायक नहीं है।

जब चि. श्रीपाद जोशी हिन्दी और अुर्दूका अेक साथ अध्ययन करनेके लिये मेरी प्रेरणासे दिल्ली जाकर रहे, तब मैंने अुनसे अुर्दू साहित्यकी छोटी-सी रूपरेखा मांगी थी। मैंने अुनसे कहा था, 'जिनकी जन्मभाषा न हिन्दी है न अुर्दू और जिन्हें अुत्तर भारतमें जानेका मौक़ा भी कम मिलता है अैसे लोगोंके लिये अुर्दू साहित्यका अेक छोटा-सा अितिहास मुझे दे दीजिये। अितिहास लिखा तो जाय हिन्दीमें, लेकिन अुर्दू-साहित्य-चर्चामें जो पारिभाषिक शब्द आते हैं, कमसे कम अुनका परिचय तो अिस अितिहासको पढ़ते-पढ़ते आपही

आप हो जाना चाहिये। अिस अुद्देश्यको सफल बनाते आपकी हिन्दी हिन्दुस्तानी बन जायगी; अुसे मैं अच्छा ही समझूँगा। अुर्दू साहित्यके अितिहासमें अुर्दूपनकी कुछ झलक तो आनी ही चाहिये।

नौसिखुवोंके लिये साहित्यके अितिहासमें हदसे ज्यादा जानकारी रहे यह लाभदायी नहीं है। मुझे डर था कि चि. श्रीपाद अुर्दूके बड़े बड़े अितिहास मूल अुर्दूमें पढ़कर वहांकी सब जानकारी थोड़े शब्दोंमें ठूँस देंगे और अन्तमें अिसे लेखकों और ग्रंथोंकी सहस्रनामावली या फेहरिस्त ही बना देंगे। यह रूपरेखा सुननेके बाद मैं देख सका कि अिन्होंने वैसी ग़लती नहीं की। साहित्यिक अभिरुचिके साथ अिसे अिन्होंने लिखा है; और अिनका अुद्देश्य वाचकोंकी जानकारीका ख़जाना भर देनेका नहीं किन्तु अुर्दू साहित्यके स्वरूप और अुसकी प्रधान धाराओंका परिचय ही कराना है। जिसने अुर्दू साहित्य पढ़ा ही नहीं है, अुसके मनमें अुस साहित्यके प्रति आकर्षण पैदा करनेका काम यह रूपरेखा अवश्य करेगी और जिस तरह अच्छे नक़शे अितना ही दिखाते हैं कि देशके प्रधान प्रधान स्थान कहाँ हैं और बीच-बीच में खुली जगह रहनेसे अुठावदार और वक्तृत्वपूर्ण (eloquent) बनते हैं अुसी तरह यह रूपरेखा भी अुर्दू साहित्यको थोड़े शब्दोंमें अुद्दीपित करती है।

यहांके अध्यापन मंदिरमें भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके विद्यार्थियोंको अुर्दू साहित्य का अितिहास पढ़ानेका मौक़ा मिलनेके कारण चि. श्रीपादका ध्यान स्वाभाविकतया विद्यार्थियोंकी कठिनाअियोंकी ओर गया है।

अुर्दू भाषा और साहित्यसे जिनका परिचय नया ही है असे अेक नवयुवकने यह रूपरेखा लिखी है, और दोनोंके बारेमें जितनेक भी जानकारी नहीं है, असा मैं अिसकी प्रस्तावना लिख रहा हूँ। राष्ट्रीय अेकताके अुत्साह की यह निशानी है, अगर पाठकोंमें यही अुत्साह पैदा हो गया तो अिस किताबका कार्य सफल हुआ समझा जायेगा।

काका कालेलकर.

वर्धा.
३१-३-४२.

शुक्रिया

वर्धा.

ता. ४-९-४१

श्रद्धेय श्री सुदर्शनजी,

सादर प्रणाम.

पूज्य श्री काकासाहबके आदेशके अनुसार गत महीनेकी २५ वीं तारीख को मैंने यहांसे 'अुर्दूके अदीब' की पांडुलिपि आपकी सेवामें भेज दी थी। आशा है वह आपको मिल गयी होगी।

अिस किताबका मक़सद यह है कि जो राष्ट्र-भाषा-प्रेमी फिर चाहे वे विद्यार्थी हों चाहे और कोअी, अुर्दू साहित्यके अितिहासका अल्प-सा परिचय प्राप्त करना चाहते हों अुन्हें अिससे कुछ मदद मिले। जहां तक मेरी जानकारी है हिन्दीमें अब तक अिस ढंगकी कोअी छोटी-सी किताब नहीं है।

मैंने पहले सोचा था कि अुर्दू साहित्यका अितिहास लिखना है तो अुसकी भाषा भी अुर्दू ही रहे, ताकि पाठक अुर्दूके पारिभाषिक शब्दोंसे भी परिचित हों, लेकिन अुसकी ज़बान बहुत ही मुश्किल हो गयी। अिसलिये मैंने अुसी का अनुवाद हिन्दुस्तानीमें करनेका सोचा। आपके पास जो पांडुलिपि भेजी है असके साथ यह हिन्दुस्तानी तर्जुमा भी है। अुसे भी देख जानेकी कृपा करें।

इस किताबके मौलिक होनेका दावा मैं बिलकुल नहीं करता; क्योंकि वह तो, नीचे लिखी पुस्तकोंकी मददसे तैयार की हुअी टिप्पणियां ही हैं। हां अुनमें प्रामाणिकताका ध्यान रखनेकी मैंने भरसक कोशिश तो जरूर की है। आधारभूत ग्रंथ ये हैं:—

१. तारीख़े अदबे अुर्दू ("हिस्ट्री ऑफ अुर्दू लिटरेचर'का अुर्दू तर्जुमा) —लेखक : डाक्टर रामबाबू सक्सेना।

२. आबे हयात—लेः मौलाना मुहम्मद हुसैन आज़ाद.

३. अुर्दू लिटरेचर—,, टी. ग्रैहैम बेली.

४. अुर्दू साहित्यका अितिहास—लेः बाबू व्रजरत्नदास.

५. कविता कौमुदी (भाग चौथा)—लेः श्री रामनरेश त्रिपाठी.

६. मुख्तसर तारीख़े अदबे अुर्दू—,, सैयद अैजाज़ हुसैन "अैजाज़."

७. मुसन्निफ़ैने अुर्दू—प्रकाशकः मकतबा जामिया, दिल्ली.

अिस दिशामें मेरा यह पहला ही प्रयत्न है, चुनांचे आप जैसे विद्वान साहित्य-स्वामीसे अुपयुक्त सूचनाअें पानेकी मैं अिच्छा रखता हूँ।

कृपया किताबको अेक बार देख जाअिये और अुसमें जो भी ख़ामियां आपको दिखाअी दें वे मुझे निःसंकोच बताअिये।

योग्य सेवा लिखते रहें।

विनम्र—

श्रीपाद जोशी

बंबअी

'६-२-४२

भाअीजान नमस्ते क़बूल कीजिए।

ख़त आपका मिला। यह जानकर खुशी हुअी कि आपने मेरे सुझावों को पसन्द किया है।

आप पूछते हैं, आपकी किताबके मुताल्लिक़ मेरी राय क्या है? मेरा खयाल था कि मैंने अपनी राय भेज दी है; अगर नहीं भेजी तो अब भेजता हूँ।

आपकी किताब मज़मून और ज़बान यानी भाव और भाषा दोनोंके लिहाज़से क़ाबिले क़द्र है। आपने अिसकी तैयारीमें जो मेहनत की है और अिस सिलसिलेमें खोज-खबरकी जो किताबें पढ़ी हैं अुसके लिये मुंहसे बेअ-ख्तियार तारीफ़-प्रशंसा निकली जाती है। गज़ब तो यह है कि आपकी 'दूर देख' आंखसे आज पैदा होकर कल मर जानेवाले अखबार भी नहीं बचे।

आप अिस किताबको ज़रूर छापिये। अिसके लिये हिन्दी और अुर्दू दोनों ज़बानोंमें जगह है। अिसे दोनों ज़बानोंके अदीब और लेखक सर आंखों पर जगह देंगे; और अिसके छप जानेसे अेक बहुत बड़ी कमी दूर हो जायगी। अिसे न छापना हिन्दी साहित्य और अुर्दू अदब दोनोंपर जुल्म होगा जिसके लिये आनेवाली नस्लें आपको कभी मुआफ़ न करेंगी।

आख़िरमें मैं आपको मुबारकबाद देता हूँ कि आपने वह काम किया जो आजसे बहुत दिन पहिले हो जाना चाहिये था; और जिसे अुन्होंने न किया जिनकी ज़बान अुर्दू और हिन्दी थी और जिसे करना अुनका धर्म था। अुन्होंने अपना धर्म पूरा न किया। आपने दूसरोंका धर्म पूरा किया। अिसके लिये देश आपकी तारीफ़ करेगा।

आपका

सुदर्शन

अध्याय पहला

अुर्दू ज़बानका प्रारंभ

अुर्दू क्या चीज़ ह ?

आम तौर पर यह समझा जाता है कि अुर्दू मुसलमानोंकी ज़बान है और हिन्दी हिन्दुओंकी। लेकिन यह तो बिलकुल साफ़ है कि कोअी भी ज़बान किसी ख़ास मज़हब या फ़िरक़ेकी ग़ुलाम नहीं हुआ करती। भाषाका किसी जाति या धर्मसे विशेष सम्बन्ध होना कोअी लाज़िमी बात नहीं है। तो फिर यह ग़लतफ़हमी क्योंकर फैली कि अुर्दू मुसलमानोंकी ज़बान है ?

अिसका कारण यह हो सकता है अुर्दू ज़बानकी वलादत (जन्म) मुसलमानोंके शाही महलोंमें हुअी और वहीं अुसने परवरिश पायी। चूंकि अिसने फ़ारसीके रस्मुलख़त (लिपि) को अख्तियार किया और संस्कृत या प्राकृतकी अपेक्षा अुसने अरबी और फ़ारसी शब्दोंको ज़्यादा प्यार और मुहब्बतके साथ अपनाया, अिसलिये भी अिस ख्यालकी तस्दीक़ (पुष्टि) होती गअी। अुर्दूकी ख़िदमत करनेवालोंकी तादाद ज्यादातर मुसलमानोंकी है और अुन्होंने अपने लेखनमें हिन्दुस्तानको छोड़कर फ़ारसको अपनी कलाका ध्येय बनाकर वहांकी बहरों (छंदों) और तशबीहों (अुपमाओं) की तस्वीरें खींची हैं, अिसलिये भी यहांके कुछ लोगोंको वह कुछ परायी-सी लगती हो। फिर भी अिस ग़लतफ़हमीकी जड़ें अबतक बहुत ज़्यादा गहरी नहीं गयी हैं क्योंकि कितने ही हिन्दू शायर और मुसन्निफ़ (लेखक) अुर्दूकी दिलोजानसे ख़िदमत करते आये हैं और आज भी बहुतसे अैसे हिन्दू लोग मिलेंगे जो अुर्दूको अपनी मादरी ज़बान (मातृभाषा) तसलीम करनेमें फ़रव्र समझते हैं।

अुर्दूकी पैदाअिश—

कुछ लोग समझते हैं कि अुर्दू जबानकी पैदाअिश फ़ारसीसे हुअी है और कुछ लोगोंका ख़याल है कि वह व्रज भाषासे पैदा हुअी है। अिनमेंसे

पहली राय तो बिलकुल ग़लत है, क्योंकि किसी अेक भाषामें किसी दूसरी भाषाके शब्दोंकी अधिकता होनेसे यह नहीं कहा जा सकता कि वह अुस दूसरी भाषासे ही पैदा हुअी है। अुर्दूकी बुनियाद तो हिन्दी ही रही है और रहेगी। अब जब हमने हिन्दीको अुर्दूकी मां समझ लिया तो यह सवाल ही नहीं रहता कि वह व्रजभाषासे पैदा हुअी है या खड़ी बोलीसे, बिहारीसे निकली है या छत्तीसगढ़ी से। क्योंकि यह सब बोलियां हिन्दी परिवारकी ही हैं। अिसलिये अब अुर्दूकी पैदाअिशको समझना आसान होगा। अुर्दू ज़बान वास्तवमें अुस हिन्दी या भाषाकी शाख़ है जो सदियोंसे दिल्ली और मेरठके आस-पास बोली जाती है। अिस वास्ते अिसे मग़रिबी (पश्चिमी) हिन्दीकी वह अदबी (साहित्यिक) सूरत समझनी चाहिये जिसका झुकाव फ़ारसी और अरबी ज़बानोंकी तरफ़ ज़्यादा है। यानी अिसका ढांचा तो असली खड़ी बोलीका है मगर अुसपर अरबी-फ़ारसीकी निहायत दिलकश नक़्क़ाशी की गयी है जिससे अूपरी तौर पर देखनेसे वह बिदेसी-सी मालूम होती है।

जब मुस्लिम मज़हब और तहज़ीब (सभ्यता) को फैलानेकी ग़रज़से बहादुर मुलमानोंने शुमाली (अुत्तरी) हिन्द पर हमले करने शुरू किये अुसी वक़्तसे अुर्दूकी अिब्तदा समझनी चाहिये। मगर जब तक यहाँ मुग़लोंकी सल्तनत क़ायम न हुअी तब तक अिस ज़बानने कोअी ख़ास अदबी सूरत अख़्तियार नहीं की। यह तो बिलकुल फ़ितरती (स्वाभाविक) बात थी कि फ़ातह (विजयी) मुसलमानोंके दरबारमें फ़ारसीका और अुसकी शायरीका दौरदौरा (धूम-धाम) रहे, लेकिन किसी भी शायरीका दायरा अितना महदूद (परिमित) नहीं रह सकता कि वह सिर्फ़ बादशाहों और अमीरोंको ही ख़ुश करे। यही वजह थी कि थोड़े ही दिनोंमें फ़ारसीकी जगह अुर्दूने ले ली; हालाँकि दरबारी कारोबारके वास्ते आख़िर तक फ़ारसी ही चलती रही।

अुर्दू लफ्ज़ कोअी बहुत पुराना नहीं है। शाहजहाँ बादशाहके ज़मानेसे पहले अिसी भाषाको हिन्दी, हिन्दुअी, रेख़्ता, दकिनी, आदि नामोंसे पुकारा जाता था। अमीर खुसरोको आजका अुर्दू संसार 'अुर्दू ज़बानका पहला शायर क़रार देता है। अुसकी 'ख़ालिकबारी' नामकी लुग़तनुमा (कोष-सदृश) किताबमें सब जगह अुर्दूके अर्थमें हिंन्दी या हिन्दुअी शब्दका ही प्रयोग

किया गया है। और शायद अिसी लिये हिन्दी साहित्यके अितिहासमें खुसरो को अितना अूँचा स्थान प्राप्त हुआ है। अमर प्रेम-काव्य 'पद्मावत' के लेखक मलिक मुहम्मद जायसीने भी 'हिन्दुअी' शब्द ही बरता है। मल्कुश्शुअरा (कविवर) सौदाके अुस्ताद शाह हातिमने भी (स० १७५० अी.) अिसी शब्दको अिस्तेमाल किया है। 'आतिश' 'बाकर' 'आगाह' 'जुरअत' वग़ैरह शायरोंने भी अिस लफ्ज़को अपनाया है। अितना ही नहीं बल्कि अुर्दू के अिस नये ज़मानेके अुस्ताद सैयद अिन्शा अल्लाखाँने अपनी मशहूर किताब 'दरियाअे लताफ़त' में कअी जगह 'हिन्दी' लफ्ज़का अिस्तेमाल 'अुर्दू' के मानीमें किया है।

मगर अिससे हमें यह नहीं समझना चाहिये कि तब तक 'अुर्दू' लफ्ज़का रिवाज कहीं था ही नहीं। अैसी बात नहीं है। तुर्की ज़बानमें लश्करके बाज़ारको अुर्दू कहते हैं। अिसलामी सल्तनतके ज़मानेमें मुग़ल, पठान, तुर्क अफ़गान वग़ैरह विदेसी सिपाही शाही फौजोंमें नौकरी करते थे। अुस वक्त लश्कर के बाज़ारोंमें लेन-देन, ख़रीद-फ़रोख्तकी ग़रज़से अुन्हें ख़ालिस अरबी, फ़ारसी या तुर्कीको छोड़कर अेक अैसी ज़बानसे काम लेना पड़ता था जिसे यहाँके दूकानदार आसानीसे समझ सकें। हम ज़रासी कोशिश करें तो कल्पना कर सकते हैं कि अुस वक्त अिस ज़बानकी शक्ल-सूरत कैसी होगी। अुसकी क्रियाअें. कारक, सर्वनाम, लिंग, वचन, विभक्ति, अव्यय वग़ैरह सबके सब न फ़ारसीके होंगे न हिन्दी के। अुसमें अरबी, फ़ारसी, तुर्की वग़ैरह ज़बानोंके लफ्ज़ोंकी भरमार होना कितना कुदरती था। अिसी ज़बानको बादमें अुर्दू कहा गया। चूँकि अिस ज़बानमें अलग अलग भाषाओंके लफ्ज़ बिखरे हुअे पड़े थे अिसलिये अुसे 'रेख्ता' भी कहते थे। (अिसकी अेक दूसरी सूरत 'रेख्ती' कहलायी जो ख़ासकर औरतोंकी बोलचालकी ज़बान है।) लेकिन रेख्तासे अक्सर मतलब अुर्दू 'शायरी' से हुआ करता है न कि नस्र (गद्य) से।

अुर्दू की अदबी सूरतः—

शाही दरबारोंमें जो शायर थे वह पहले पहल सिर्फ फ़ारसीमें अपने कलमके जौहर दिखलाया करते थे। अिसकी वजह साफ़ साफ़ यह थी कि बादशाह और अमीर व वजीर यहांकी किसी देशी भाषासे बहुत कम वाक़िफ़

रहते थे। अिसके अलावा जिन शायरोंको वहाँ प्रवेश मिलता था वह अक्सर अीरान अौर फ़ारससे आये हुअे होते थे। अिसलिये अुर्दू साहित्यकी बुनियाद अैसे लोगोंके हाथों पड़ी जो 'भाषा' की बनिस्बत फारसीपर ज्यादा फ़रेफ्ता (मुग्ध) थे। अिसीलिये अुर्दू में अिश्क़के फूल खिलने लगे जिनकी खुशबूने आशिक़ों अौर माशूक़ोंको अपनी तरफ खींच लिया। फारसीकी मददकी वजहसे अुर्दूकी शायरीको तरक्कीके वह दर्जे नहीं तय करने पड़े जिनकी रफ्तार तो ज़रूर सुस्त होती है मगर अेक नयी ज़बानके वास्ते जो निहायत ज़रूरी होते हैं। जैसे कोअी आदमी बिना बचपनके ही जवान बन गया हो। अिस कमीकी वजहसे वही पुरानी निकम्मी बातें अौर वही मज़मून जो फारसी में बेहद पाये जाते हैं अौर जिनको अिस मुल्कसे कोअी ताल्लुक नहीं है, अिस अिमारतकी बुनियादके पत्थर बन गये। शुरू-शुरूमें तो अुर्दूमें फारसी शेरोंका सिर्फ लफ्ज़ी तर्जुमा ही होता था। लैला-मजनूँका अिश्क़, शीरीं-फ़रहादकी मुहब्बत, रुस्तम अौर अिस्फंदयारकी बहादुरी अौर जेहूँ सेहूँ नदियां, अुसी तरह अुर्दूमें मौजूद रहीं जिस तरह फारसी शायरीमें थीं। वहांके बुलबुल यहां बोलने लगे, नौसेरवांका अिन्साफ़, हातिमकी सख़ावत (अुदारता) यूसफ़का हुस्न, बुलबुलका तराना, सम्बुलका लहराना सब कुछ यहां भी चल पड़ा। अिससे पता चलता है कि अुर्दूकी शायरी कितनी रस्मी अौर लकीरकी फ़कीर है। फ़ारसीके रंगमें यहां भी अिश्क़के मज़मून फ़ितरतके खिलाफ बांधे जाने लगे, यानी मर्दका अिश्क़ मर्दके साथ बताया जाने लगा जो कि यहांकी फ़िज़ांके लिये अेक बिलकुल अनोखी चीज़ थी। अिसके विपरीत हिन्दीकी कविता वास्तविक अौर प्रकृतिके अनुकूल होनेसे दिलमें बैठ जाती थी।

यह अेक ताज्जुबकी बात है कि अुर्दूको अदबी सूरत शुमाली हिन्दमें न मिलकर दक्षिणमें मिली। हालांकि अमीर खुसरो (स. १२५५-१३२४अी.) ने सबसे पहले अुर्दू लफ़्ज़ोंका अिस्तेमाल अदबी लिहाज़से किया अौर अुर्दू शेर कहे, फिर भी अुसकी ज़बानकी तर्ज़ अुर्दूकी बनिस्बत हिन्दीके ही ज्यादा नज़दीक़ मालूम होती है। अुसने फारसीके बहरोंको अपनाया है। अुसकी पहेलियां, मुकरेनियां, अनमेलियां, दोसखुने वग़ैरह आज भी लोगोंकी ज़बान पर हैं। लेकिन अुसके बाद क़रीब-क़रीब साढ़े तीनसौ साल तक की कोअी ख़बर नहीं मिलती। यह

सिलसिला अुसके बाद ही टूट गया। चुनांचे अिसका महत्व कुछ कम हो गया।

अुर्दू शायरीने सोलहवीं सदीके आखिरी हिस्सेमें अपना तराना फिरसे अलापना शुरू किया जो अबतक जारी है। अिसलिये अुर्दूके साहित्यिक विकासमें अमीर खुसरोका स्थान अुतने महत्त्वका न रहा जितना कि हिन्दीके साहित्यमें है।

प्रोफ़ेसर महमूद शेरानीने अपनी किताब 'पंजाबमें अुर्दू' में यह साबित करनेकी कोशिश की है कि अुर्दूकी जन्मभूमि पंजाब है। (याद रहे कि प्रोफ़ेसर महमूद शेरानी पंजाबके नहीं, यू. पी. के रहनेवाले हैं।) मगर हमारे सामने जो सबूत पेश आये हैं अुनसे तो हमारे अिस कथनकी ही पुष्टि होती है कि अुर्दूकी जन्मभूमि अुत्तर नहीं बल्कि दक्षिण है।

बीजापूर और गोलकुण्डेके बादशाह अुर्दू-अदबके सबसे पहले हिमायती हैं। अुर्दूके पहले शायर भी सुल्तान कुली कुतुबशाह हैं जो सल्तनत गोलकूंडेके बादशाह थे। अिनके बाद अिनके भतीजे सुल्तान मुहम्मद कुतुबशाह भी अच्छे शायर और शायरनवाज़ (शायरों पर कृपा रखनेवाले) थे। अिनके बाद शम्सुद्दीन वलीअुल्ला खांने स. १७२२ अी. में दिल्ली जाकर अपने 'दीवाने रेख्ता' (रेख्ताका काव्य संग्रह) पर बड़ा नाम कमाया। यहां तक कि लोगोंने अुन्हें 'बाबाअे रेख्ता'का खिताब दे दिया।

अब अुनकी तर्ज़ पर दिल्लीमें भी शेर कहे जाने लगे और थोड़े ही दिनोंमें दिल्ली और लखनअूके नगाड़ोंकी आवाज़में दक्षिणकी ढोलककी आवाज़ किसीको न सुनायी दी। यहां तक कि लोग यह भी भूल गये कि जिस आमके मीठे-मीठे फल हम चख रहे हैं अुसकी गुठली दक्षिणसे आयी थी।

मुस्लिम सल्तनतोंकी तबाहीके ज़मानेमें अुर्दूकी शायरीका तारा बलन्द हो रहा था अिसलिये अुसमें बहुत-सी ख़राबियां भी आ गयीं जिनका जिक्र हम आगे चलकर करेंगे। अंग्रेज़ोंके यहां आजानेके बाद अुर्दू दिन दूनी रात चौगुनी तरक्क़ी करने लगी। वह राज-काज़ कोर्ट-अदालत की ज़बान करार दी गयी, स्कूलोंमें ठीक-ठीक ढङ्ग पर अुसकी पढ़ाअीका अिन्तज़ाम हो गया और अुच्च अभिरुचिके लोगोंने अुसे राष्ट्रभाषा बनानेका बीड़ा अुठाया जिससे वह आज अेक खास हैसियत रखती है। चुनांचे अिसमें शक नहीं कि अुसका अितिहास रोचक और शिक्षाप्रद होगा।

अध्याय दूसरा

दक्षिणके पुराने शायर

दीबाचाः—

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि अुर्दू शायरीकी अिब्तदा दिल्लीसे बहुत दूर दक्षिणमें हुअी; और सो भी दकिनी ज़बानके नामसे। यूं तो अल्ला-अुद्दीन ख़िलजीकी देवगिरी-दौलताबादकी फ़तहयाबीके बाद दिल्लीके बड़े-बड़े आलिमों (विद्वानों) और सूफियोंकी आमदरफ्त (आवागमन) दक्षिणकी तरफ शुरू हो गयी थी; मगर जब स. १३४७ अी. के करीब बहमनी सल्तनत क़ायम हुअी तब यह आमदरफ्त और भी बढ़ गयी।

चूँकि अैसा समझा जाता था कि बहमनी राज गंगू नामके किसी ब्राह्मण की दुआका नतीजा है, अिसलिये यहांके अक्सर वजीर ब्राह्मण या कमसे कम हिन्दू होते थे। यह वज़ीर फ़ारसी जानते थे मगर फारसी अुनकी ज़बान न थी। अिसलिये अेक न अेक दिन फ़ारसीकी जगह अुर्दूका आ जाना लाज़िमी था। अिसी तरह हिन्दू रानियों और बेगमोंकी वजहसे जनानखानेमें भी अुर्दू की पहुंच-रसायी हो जाना जरूरी था।

अब सवाल यह अुठता है कि फ़ारसीकी जगह अुर्दूके बजाय किसी दक्षिणी भाषाने क्यों न ले ली? अिसका कारण यह था कि अेक तो अुर्दू वहांके फ़ातिहोंकी ज़बान थी जिसे सीखनेमें जित हिन्दुओंका माली (आर्थिक) फ़ायदा था और अुसमें वे अपनी शान समझते थे जैसा कि आजकल अंग्रेज़ी के मुताल्लिक़ हुआ करता है। दूसरा कारण यह था कि जो विजयी वीर दिल्लीसे दक्षिण गये वे अपने साथ दिल्लीकी ज़बानको भी लेते गये जिसे वे हिन्दी कहते थे, मगर हक़ीक़तमें जो मुश्किल अुर्दू ही थी। दक्षिणकी भाषाअें अिस नयी भाषाके साथ मेल नहीं खाती थीं। बहमनी सल्तनत मराठी, कन्नड़ और तेलगु अिन तीन अलग-अलग भाषाओंके सूबोंमें बँटी हुअी थी। अिस-

लिये दरबारमें अिनमेंसे किसी अेक ज़बानको तरजीह देना नामुमकिन था। तीसरा अेक कारण यह भी था कि अीरान, फ़ारिस, अरब, अफ़गानिस्तान वग़ैरह बाहरी मुल्कोंसे जो मुसलमान दक्षिणमें जाते थे वह अपनेको वहांके निवासी मुसलमानोंसे अूंचा समझते थे जिससे अिन विलायती और देसी मुसलमानोंमें हमेशा लड़ाअी-झगड़े होते रहते थे। अिन लड़ाअी-झगड़ोंमें दक्षिणके अधिकतर हिन्दू राजाओं और ज़मीनदारोंने देसी मुसलमानोंका साथ देना मंजूर किया। अिससे अुर्दूके प्रचारमें काफ़ी मदद मिली क्योंकि वहांकी देसी ज़बानों और फ़ारसीको जोड़नेवाली वही अेक सामान्य भाषा अुस वक्त प्रचारमें थी।

अिससे अेक बहुत बड़ा नुक़सान भी हुआ। अुर्दू शायरीकी अिब्तदा अगर अुत्तरी भारतमें हुआ होती तो अुसमें अमीर खुसरोकी ज़बानकी तरह बहुत-से हिन्दी छन्द और शब्द कसरतसे आ जाते जिससे हिन्दी और अुर्दूके बीच आज जो अेक वसीअ (विस्तृत) खाअी मालूम हो रही है, वह हरगिज़ न होती। बल्कि यह भी मुमकिन था कि किसी रोज यह दोनों ज़बानें गले मिलकर अेक हो जातीं। मगर अफसोस है कि अैसा न हो सका। दक्षिण में हिन्दीके जैसा आसान अरूज़ (पिंगल) न होनेके कारण तथा दक्षिणी भाषाओंके लफ्ज अुर्दूकी आशिक़ाना शायरीके लिये नामौजूं होनेकी वजहसे अुर्दूको अरबी तथा फ़ारसीके पिंगल और शब्दोंको मजबूरन् अपनाना पड़ा जो आज तक चला आ रहा है।

हालाँकि बहमनी सल्तनतके पांच टुकड़े हो गये थे, मगर अुर्दू अदबकी तारीख़को मद्देनज़र रखते हुअे सिर्फ दो ही सल्तनतें—बिजापूर और गोल-कूंडा—सोचने लायक़ हैं।

गोलकूंडा

पहला शायर 'कुतबा' या 'मुआनी':—

सुलतान कुली कुतुबशाह स. १५८० अी. में गोलकूंडेकी गद्दी पर बैठे। यह खुद अच्छे शायर भी थे और शायरोंके क़द्रदां भी। अिन्हें फ़नेतामीर (भवन-निर्माण-कला) में बड़ी दिलचस्पी थी। अिनके ज़मानेमें अरब व अीरान तकसे बड़े-बड़े आलिम-फ़ाज़िल गोलकूंडेके दरबारमें आते थे और

ञिनाम-ञिकराम पाते थे । ञिस बादशाहने अपनी माशूक़ा (प्रेमिका) भागमतीके नाम पर 'भागानगर' बसाया जिसे आज-कल 'हैदराबाद' कहते हैं । ञिन्होंने स. १६११ अी. में ञिन्तक़ाल फ़रमाया ।

शायरीमें वे अपना तख़ल्लुस (अुपनाम) पहले 'कुतबा' और बादमें 'मुआनी' करते थे। यह पहले शख्स हैं जिनका अुर्दू कलाम (काव्य) संग्रह-की सूरतमें मौजूद है । आश्चर्यकी बात है कि ञिनके कलाम पर हिन्दीका भी बहुत बड़ा असर पाया जाता है । ञिनके दीवानके दीबाचेसे पता चलता है कि ञिन्होंने पचास हजार शेर कहे थे, जिनमें मसनवियां, क़सीदे, ग़जलें, तरजीहबंद, रुबाञियां वगैरह शामिल हैं । ञिनके कलाममें दक्खिणी लफ़्ज मी बहुत हैं जो दिल्ली लखनअूमें नहीं चलते थे । फ़ारसीके साथ-साथ हिंदी के शब्दोंको भी ञिन्होंने स्थान दिया है । हालाँकि और और अुर्दू कवियोंकी भांति ञिनके भी ख़याल, भाव, और छंद फ़ारसके मालूम होते हैं मगर अुन-पर हिन्दुस्तानीपनकी भी बहुत गहरी छाप है । ञिनका प्रेममार्ग तो बिलकुल भारतीय ही है । यानी स्त्री प्रेमिका है और पुरुष प्रेम-पात्र । हिन्दी अुपमाओं और कथानकोंका भी बहिष्कार ञिन्होंने नहीं किया । हिन्दू और मुस्लिम दोनों मजहबोंके त्यौहारोंपर वह शेर कहते थे और दोनोंकी तारीफ़ कर-करके खुश होते थे ।

ञिनकी भाषा साफ़, सादा और मधुर-मीठी है । कलामका नमूना देखिये:—

"करते हैं दावा शेरका सब अपनी तबअसूँ ।
बख्शा फ़सीह शेर 'मुआनी' ने तयीं खुदा ।।"

ञिनके बाद ञिनके भतीजे सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह स. १६११ अी. में सल्तनतके मालिक हुअे । ये भी अच्छे शायर और शायरोंके आश्रय-दाता थे । ञिन्होंने अेक दीवान फ़ारसीका और अेक दक्खिणी (अुर्दू) का यादगार छोड़ा है । ञिनकी जबानमें सफ़ाअी, सादगी और मिठास पायी जाती हैं । ञिनकी मृत्यु स. १६२५ अी. में हुअी । यह अपना तख़ल्लुस 'जिल्ले अलाह' किया करते थे ।

ञिनके बेटे अब्दुल्ला कुतुबशाह 'अब्दुल्ला' भी अच्छे कवि थे ।

ञिनके दरबारमें कञी आला दर्जेके शायर थे। ञिब्ननिशाती---जिसने 'फूलबान' नामकी मशहूर मसनवी लिखी थी, ञिन्हींके आश्रयमें था। मौ० वजही, जिन्होंने स. ११७५ ञी. के आसपास 'सबरस' नामक गद्य प्रेम-कथा लिखी जिसकी भाषा तुकबन्दी-पूर्ण ञौर दक्षिणी ञुर्दू है, ञिन्हींके जमानेमें थे। ञिसी समय तहसीनुद्दीन नामके कविने 'कामरूप ञौर कला' नामकी मसनवी लिख कर चारों तरफ़ धूम मचा दी। ञिसमें अवधके राजकुमार कामरूप ञौर सिंहलकी राजकुमारी कलाका प्रेमवर्णन है। सुलतान अब्दुल्ला ने स. १६७२ ञी. तक राज किया। ञुनके बाद अबुलहसन कुतुबशाह स. १६८७ ञी. तक तख़्त पर रहे। ये भी अच्छे शायर थे ञौर 'तानाशाह' तख़ल्लुस करते थे। ञिनके ज़मानेमें 'शुजाञुद्दीन 'नूरी' गुजराती नामका ञेक शायर हुआ है जिसे कुछ दिन पहले ञुर्दूका पहला शायर समझा जाता था।

बिजापूर

गोलकूंडेकी तरह यहां भी शायरोंका जमघट लगा रहता था। दूसरे ञिब्राहीम आदिलशाह (स. १५८०-१६२६ ञी.) के दरबारमें 'मुल्ला ज़हूरी' नामका ञेक मशहूर शायर था जिसने 'ख़्वाने खलील' ञौर 'गुलज़ारे ञिब्राहीम' नामके दो ग्रंथ लिख कर राजाको नज़र किये। खुद ञिब्राहीम आदिलशाह भी अच्छे शायर थे ञौर ञुन्होंने हिन्दी गान-विद्या पर 'नौरस' नामकी ञेक पुस्तक लिखी है।

ञिनके साहबजादे (सुपुत्र) अली आदिलशाह (दूसरे) शायरों ञौर आलिमोंकी क़द्र करते थे। ञिन्होंने 'नौरसनामा' नामकी ञेक किताब लिखी है। ञिनके दरबारमें मुहम्मद नसरत 'नसरती' नामका अच्छा कवि था जिसने 'अलीनामा' नामक ञेक बड़ी मसनवी दक्षिणी ञुर्दूमें लिखी। ञिसमें हज़रत अलीकी प्रशंसा थी। यह मसनवी लोगोंमें ञितनी मक़बूल हुञी कि ञिसका लेखक मलिकुश्शुअरा माना गया।

ञिसी ज़मानेमें मशहूर अंध-कवि हाशिमी भी हुआ जिसने दक्षिणी ञुर्दूमें 'यूसुफ़ ज़ुलेखा' नामकी मसनवी लिखी। ञिसने भारतीय प्रेमपद्धतिको अपनाया था। यह हिन्दीका भी अच्छा कवि था।

'वली'

स. १६६६—१७४४ अी.:—

शम्सुद्दीन वलीअुल्लाखां 'वली' अहमदाबाद गुजरातके रहनेवाले थे+। कुछ दिन पहले तक अिन्हें अुर्दूका आदि कवि' माना जाता रहा है, और अिसलिये ये 'बाबाअे रेख्ता' कहलाते हैं। अिन्होंने सैर-सफ़र बहुत किया था जिससे अिनके काव्यमें सातारा, दिल्ली, सूरत, और बंगाल जैसे दूर २ के शहरों और सूबोंका जिक्र मिलता है।

यह स. १७०० अी. के क़रीब दिल्ली गये और शाह सादुल्ला 'गुल-शन' से अिन्होंने सूफ़ी धर्मकी दीक्षा ली। लेकिन अिस वक्त अुनकी किसीने क़द्र नहीं की अिसलिये वह वापस आ गये और स. १७२२ अी. में फिर दिल्ली गये। अबकी बार अिनके 'दीवाने रेख्ता' बड़ा जर्चा हुआ; यहां तक कि दिल्लीके नामी अुस्ताद 'खांने आरजू' नाजी' 'मजमून' 'आवरू' वगैरहने अिनके कलामकी पैरवी (अनुकरण) की और दिल्लीकी शायरीके यह सबसे पहले अुस्ताद माने जाने लगे।

अिनकी ज़बान निहायत दिलचस्प, रंगीन और आसान है। किसी धर्म या पंथसे अिन्हें द्वेष या विरोध नहीं था। अिसलिये अिनकी भाषा गंगा-जमनी, आडंरशून्य और बिककुल सादी है। हिन्दी लफ्ज भी फ़ारसी लफ्जों के साथ जाबजा मिले हुये हैं। कलामका नमूना देखियेः—

जिस वक्त अे सरीज़न ! तू बेहिजाब होगा।
हर ज़र्रा तुझ झलकसूं जूं आफ़ताब होगा॥
मत जा चमनमें लाला, बुलबुल प' मत सितम कर।
गरमी सुँ तुझ निगहकी गलगल गुलाब होगा॥
मत आअिनाको दिखला अपना जमाले रोशन।
तुझ मुखकी ताब देखे आअीना आब होगा॥
निकला है वह सितमगर तेग़े अदा कूँ लेकर।
सीने प' आशिक़ाँके अब फ़तहयाब होगा॥
रखता है क्यूँ जफ़ा को मुझपर रवा अे ज़ालिम।

+कुछ लोगोंकी यह भी राय है कि यह दक्षिणी थे।

महशरमें तुझसे आखिर मेरा हिसाब होगा ॥
मुझको हुआ है मालुम अे मस्त जामखूनी ।
तुझ अँखड़ियांको देखे आलम खराब होगा ॥
हातिफ़ने यूँ दिया है मुझको **वली** बशारत ।
अुसकी गलीमें जा तो मक़सद शिताब होगा ॥

वलीको अुर्दू चॉसर कहा जाता है । अिनके साथ अुर्दूकी शायरी देहलीमें आ गअी और अुर्दू ज़बान फ़ारसीके मुक़ाबलेमें खड़ी हो गयी ।

सिराजः—

(स. १७१२-१७६२) सैयद सिराजुद्दीन 'सिराज़' औरंगाबादके रहनेवाले अिन्होंने एक फ़ारसीका और एक रेख्तेका अिस तरह दो दीवान लिखे । अिनका कलाम आसान और सादा है । तकल्लुफ़ व बनावटका नामोंनिशान तक नहीं है । वलीने जो पौदा दक्खिणमें जमाया था अुसे अपनी मेहनतसे हरा-भरा करनेका काम सिराजने किया । अिसलिये अिन्हें दक्खिणके अुस्ताद कहते हैं ।

अिस ज़मानेमें दक्खिणमें और भी बहुतसे मशहूर शायर हुअे जिनमें 'आजिज़' 'यार' अीमां' 'शहीद' वग़ैरह हैं । मद्रास और कर्नाटकमें भी बहुत से शायर गुजरे हैं ।

अुर्दू ज़बान जब देहलीसे दक्खिणमें आयी तो स्वाभाविकरूपसे अुसमें बहुत-सी तब्दीलियां हो गयीं । और बहुतसे नये नये शब्द भी आ घुसे । अिससे वह दिल्लीकी 'अुर्दूअे मुअल्ला' न रहकर 'दक्खिणी अुर्दू' या सिर्फ 'दकिनी' बन गयी । अिसके अलावा यह भी एक ग़ौर करनेकी बात है कि दिल्लीकी ज़बानमें जो तरक्की व तब्दीली होती गयी अिससे दूरीकी वजहसे दक्खिणी ज़बान आगाह न रह सकी और अिसका ढांचा वही पुराना रह गया; जिससे वह अुर्दूसे जुदा मालूम होने लगी । फिर भी यह कहा जा सकता है कि वह अुर्दूका ही दूसरा रूप है ।

अध्याय तीसरा

दिल्लीकी महफ़िलें

(हातिम व आरज़ू)

प्रारंभिक :

यूँ तो शाहजहाँ और औरंगज़ेबके ज़माने तक दिल्ली और अुसके आस-पासके मुल्ककी आम ज़बान अुर्दू हो गई थी। अिसीका दूसरा नाम खड़ी बोली था। लेकिन अुस वक़्त तक अुर्दूमें अदब लिखना जायज़ न समझा गया जब तक कि दक्षिणसे वली अपने 'दीवाने रेख्ता' की सौग़ात (भेंट) लेकर देहली न आया। अिससे पहले कोअी फ़ारसी शायर कभी कभी अुर्दू शेर कह लिया करता था मगर मुहम्मद शाह (रँगीले) के ज़माने तक वह अदबी ज़बान न बन सकी।

अब ज़रा ग़ौर करके देखिये कि यह ज़माना अुर्दूकी शायरीके लिअे कितना मौज़ूँ था। दिल्लीका बादशाह और दरबारी लोग सियासत (राजनीति) से बिलकुल नावाक़िफ़ और रँगीले थे। मराठों और रुहिलोंके हाथमें तलवार थी; वह जो चाहे कर सकते थे। नालायक़ शाही सरदारों और अमीरोंने जब देखा कि खुद बादशाह जंगके मैदानसे दूर भागता है, तो अुन्होंनेभी तलवारोंको फेंक कर क़लम पकड़ ली और कविता लिखने लगे। आये दिन मराठे और रुहिले हमले करके लूट-खसोटसे हिन्दोस्तानकी राजधानीको तबाह कर रहे थे पर शाह और सरदार ख़याली माशूक़की अदृश्य कमरकी खोजमें पागल थे।

वलीके दीवनकी ज़बान दकिनी थी। दिल्ली आकर अुसमें बहुतसी तब्द-लियां हो गयीं, बहुतसे भद्दे अलफ़ाज और मुहावरोंकी कांट-छांट हो गयी। वलीकी भाषा देसी और छंद बिदेसी थे। मगर अब धीरे-धीरे भाषा भी अधिकाधिक विदेशी बनने लगी। अिस वक्त कलाममें यकरंगीकी कमी थी;

और भद्दे तथा अशिष्ट लफ्ज़ों की शिद्दत (अधिकता)। तसव्वुफ़ (सूफीधर्म) के रंगमें वह डूबी हुई थी जो कि फारसीकी सिर्फ़ नक्क़ाली थी। भाव तथा भाषामें काफी सादगी थी पर वह धीरे-धीरे कम होने लगी थी। बंदिश ढीली रहती थी, क़वायदकी पाबन्दी ठीक ठीक नहीं होती थी और फ़िज़ूलकी बातें भी असमें बहुत आती थीं।

अिस ज़मानेमें ज़बानका स्वरूप भी आजके स्वरूपसे कुछ अलग था। मसलनः—

'से'	के बदले	'सो' 'सूँ' या 'सेती'	चलता था।
'को'	,, ,,	'कों' 'कूँ'	,, ,,
दुनियामें'	,, ,,	'जगमने'	,, ,,
जाता है'	,, ,,	'जावत है'	,, ,,
'दिल'	,, ,,	'मन'	,, ,,
'तरफ़'	,, ,,	'ओर'	,, ,,
'जाती थीं'	,, ,,	'जातिआं थीं'	,, ,,

मगर अिनको ग़लत समझकर अुन्हें निकाल डालनेकी कोशिशें हो रही थीं, जिसका नतीजा यह हुआ कि अेक अरसेके बाद यह लफ्ज़ मतरूक (त्यक्त) समझे जाने लगे

हातिमः--

सं० १६६६- १७६१ ओ. शेख जहूरुद्दीन शाह 'हातिम' दिल्लीके रहने वाले थे। कुछ दिनोंके लिये यह अुम्दतुल्मुल्क अमीर खाँके मुसाहिब (पार्श्ववर्ती) रहे लेकिन बादमें फ़क़ीरी अख्तियार की। पहले यह 'रम्ज़' तखल्लुस करके फ़ारसीमें अिन्शा-परदाज़ी (लेखन) करते थे मगर जब वलीके 'दीवानेरेख्ता' की देहलीमें धूम मच गयी तो अिन्होंने भी दो दीवान रेख्तेके लिख डाले जिससे वह रेख्तेके अुस्ताद माने गये। अिन्होंने जो पहला दीवान शाया किया वह बहुत बड़ा होनेकी वजहसे अुसीमेंसे काट

छांटकर अुन्होंने अेक छोटा दीवान बनाया । अिसका नाम 'दीवानज़ादा' रखा गया । अिनका अेक दीवान फ़ारसीमें भी मिलता है । अिन्होंने अेक मसनवी 'हुक्के' पर लिखी है ।

फ़ारसीमें यह 'सायब'को और अुर्दूमें 'वली' को अुस्ताद मानते थे। अिनके बीसों शागिर्द थे; जिनमेंसे मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी 'सौदा'ने अिनके बलन्द नाम पर चार चाँद लगा दिये । भाषाकी काटछाँट और ज़बानकी दुरुस्तीका जो काम अिन्होंने शुरू किया वह सौ बरस बाद 'ज़ौक़' 'आतिश' और 'नासिख़' के ज़मानेमें पूरा हो गया। अिनका मर्तबा (स्थान) अुर्दू अदबमें निहायत आला और मुमताज़ (प्रतिष्ठित)माना जाता है ।

अिनकी ज़बान साफ़, सादा और शुद्ध है । कलामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाअियेः—

छुपा नहीं जा बजा हाज़िर है प्यारा ।
कहाँ वह चश्म ? जो मारें नज़ारा ।।
जुदा नहीं सब सेती तहक़ीक़ कर देख ।
मिला है सबसे औ, सबसे है न्यारा ।।
मुसाफिर अुठ ! तुझे चलना है मंज़िल ।
बजे है कूचका हरदम नक़ारा ।।
मिसाले बहर मौजें मारता है ।
किया जिसने अिस जगसूँ किनारा ।।
सयाने ख़ल्क़से यूँ भागते हैं ।
कि जूँ आतिश सेती भागे है पारा ।।
समझकर देख सब जग सीख माही।
कहाँ हैगा सिकन्दर काँ है दारा ।।
कहे हैं अहले अुर्फ़ा अुसको जीता ।
जो मरकर अिश्कमें दुनियासूँ हारा ।।
सफ़ाकर दिलके आअीनेको हातिम ।
देखा चाहिये सजन गर आशकारा ।।

अिनकी भाषा पर पुराने ढंगकी क़वायदका काफ़ी असर मिलता है ।

आरज़ू

(स० १६८६-१७५६ अी.) सिराजुद्दीन अलीखाँ 'आरज़ू' आगरेके रहनेवाले थे मगर दिल्ली आ बसे थे। यह फ़ारसी के मशहूर आलिम और नामवर शायर थे। 'मीर' 'सौदा' 'मज़हर' 'दर्द' वग़ैरह अव्वल दर्जेके शायर अिन्हें अुस्ताद मानते थे। मीर हसनने अपने 'तज़किरा अुश्शुअरा' (कवि-चरित्र) नामके ग्रंथमें तो यहाँ तक कह डाला है कि "अमीर खुसरो देहलवीके बाद आरज़ूही हिन्दुस्तानके सबसे बड़े शायर हैं।"

अिन्होंने फ़ारसीमें तीस हजार शेर कहे हैं। अिनकी अुर्दू तस्नीफ़ें (रचनाअें) फ़ारसी तस्नीफ़ोंकी बनिस्बत बहुत कम हैं फिर भी अिन्होंने अपनी अुस्तादीकी वजहसे अुर्दू जबानकी जो ख़िदमत की है वह हमेशा याद रहेगी। अिनकी मशहूर तस्नीफ़ें यह हैं:-'सिराजुल्लुग़ात' 'ग़रायबुल्लुग़ात' 'नवादिरुल अलफ़ाज़' 'तंबीहुल ग़ाफ़िलीन' 'मजमा अुल नफ़ायस' 'तज़किराअे आरज़ू'...।

अिनकी ज़बान मुश्किल किन्तु साफ़ और मी[illegible] थी। नमूना देखिये:—

'आता है हर सहर अुठ तेरी बराबरी को।
क्या दिन लगे हैं देखो खुरशीद खावरी को॥
अुस तन्दखू सनमसे जबसे लगा हूँ मिलने।
हर कोई मानता है मेरी दिलावरी को॥

मज़हर;-

(स. १६६८-१७८० अी) मिर्ज़ा जानजानाँ 'मज़हर' का जन्म मालवेमें हुआ था और अिनका जानजानाँ नाम औरंगज़ेब बादशाहने रखा था। यह जातिके हनफीसुन्नी थे मगर बादमें सूफ़ी फ़कीर हो गये। अिनके शागिर्दोंमें हिन्दू मुसलमान दोनों धर्मोंके अनुयायी होते थे। अपने अेक खुबसूरत नौजवान दोस्त व शागिर्द 'मीर अब्दुल हअी 'ताबाँ' से यह बहुत मुहब्बत रखते थे।

शीअोंके मजहबके ख़िलाफ़ चंद लफ़्ज कहने पर यह फ़ौलाद खाँ नामक शीआ शख्सके द्वारा रातके समय धोखेसे मार डाले गये।

अिन्होंने अेक पूरा दीवान फ़ारसीका और अेक अधूरा दीवान अुर्दूका यादगार छोड़ा है। अिनका तजुर्बा बहुत बढ़ा चढ़ा था जिससे अुनके कलाममें दिलको छूकर पिघलानेवाला मजमून बहुत ज़्यादा है। आशिक़ाना रंग अिनकी खासियत है। ज़बानको साफ़ करनेमें अिनका बहुत बड़ा हाथ था। आखिरी अुम्रमें सूफियाना रंग ज़्यादा गाढ़ा हो गया था जिससे जगह जगह पर नसीहत-के गुलाब खिले हुअे पाये जाते हैं।

कलामका नमूना देखियेः—

गर्चे अल्ताफ़के क़ाबिल य' दिले जार न था।
लेकिन अिस जौरोजफ़ाका भी सज़ावार न था॥
लोग कहते हैं मुंआ **मज़हर** बेकस अफ़सोस।
क्या हुआ अुसको ? वह अितना भी तो बीमार न था॥
जवाँ मारा गया खूबाँके बदले मीरजा **मज़हर**।
भला था या बुरा था, जो कुछ था खूब काम आया॥

अिस ज़मानेमें और भी बहुतसे आला दर्जेके शायर हुअे जिनमें ज़ैल (नीचेके) मशहूर हैं:-

(१) शाह मुबारक 'आबरू' (स० ई१७००-ई१७५० अी') अिन्हें अुर्दू शायरोंके रहबर (पथ-प्रदर्शक) कहा जाता है।

(२) शेख शरफुद्दीन 'मज़मून' (मृत्यु स. १७४५ अी.)

(३) सैयद मुहम्मद शाकिर 'नाजी' यह कविता अच्छी करते थे पर हर शख्सके कलाममें अैब निकाला करते थे।

(४) मीर अब्दुल हअी 'ताबाँ' ;-अिन्हें 'दूसरा यूसुफ़' कहा करते थे। अिनकी खूबसूरतीकी शुहरत यहाँ तक हो गयी थी कि खुद शाह आलम बाद-शाह भी अिन्हें देखनेको हाथी पर गये थे।

(५) गुलाम मुस्तफ़ा 'यकरंग' :-अिनका कलाम निहायत सादा है।

(६) अशरफ अली खाँ 'फ़ुग़ाँ' :-अिन्होंने हिन्दी मुहाविरोंका अच्छा अिस्तेमाल किया है।

अध्याय चौथा

मीर और सौदा

तमहीद (भूमिका) :—

अिस जमानेमें अुर्दू शायरीके आसमानमें दो अैसे रोशन सितारे चमकते रहे जिनकी रोशनी आज भी हमारी आँखोंको चकाचौंध कर देती है यह सितारे हैं मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ी 'सौदा' और हजरत मीर तक़ी 'मीर'। अिनकी हस्ती से शायरीका यह दौर सबसे बड़ी तरक्कीका दौर समझा जाता है। अिससे पहलेके ज़मानेके शायर अुर्दू अदबके वालिद और रहबर थे; मगर अिस वक़्तमें सखुन (काव्य) के तमाम गुण कमाल दर्जे तक पहुँच गये। 'सौदा' 'मीर' 'दर्द' 'सोज़' वग़ैरह फ़न (कला) के बेनज़ीर व बेमिसाल अुस्तादोंने अिस अहदको रोशन किया है।

यह वही ज़माना है जिसमें दिल्लीकी सल्तनतको अंग्रेज़ोंने अपने क़ब्ज़े में कर लिया और सारे हिन्दुस्तान भरमें अेक सनसनी-सी फैला दी। बादशाह और अमीरोंका आश्रय टूट जानेकी वजहसे अिस कालके शायरोंको दिलशिकस्ता (भग्न-हृदय) होकर दिल्ली छोड़नी पड़ी। अिस वक्तके दिल्लीके बादशाह खुद शायर और शायरोंके क़द्रदाँ थे। लेकिन अुनकी शायरीकी मुहब्बत अिस दर्जे तक पहुँची कि अुसकी वजहसे अुन्हें अपनी सल्तनतसे हाथ धोकर अंग्रेजोंकी क़ैदमें पड़ा रहने पड़ा।

अिस अहदमें ज़बान पर फ़ारसियतका बहुत ज़्यादा ग़लबा (प्रधानता-प्रभाव) हुआ जिसकी वजह यह मालूम होती है कि अिस ज़मानेके शायरोंने फ़ारसीके आख़िरी कवियोंके कलामको सामने रखकर शायरी शुरू की थी।

भाषाकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह मालूम होता है कि अिस ज़मानेमें पुरानी हिन्दी और दकिनी अुर्दूके बहुतसे शब्द और शब्द-प्रयोग मतरूक हो गये। फिर भी कुछ तो चलते ही रहे जैसे :—

'तूने'	की	जगह	'तै'	अिस्तेमाल	होता	था।
'ज़रा'	,,	,,	'टुक'	,,	,,	,,
'कबतक'	,,	,,	'कबलग'	,,	,,	,,
'बात'	,,	,,	'बचन'	,,	,,	,,
'लगा'	,,	,,	'लागा'	,,	,,	,,

लिंगभेद पर भी अिस वक्त ज़्यादा ध्यान नहीं दिया जाता था जिससे अेक ही शब्द जिसे मीर साहब पुल्लिंगमें प्रयुक्त करते थे, सौदाकी कवितामें स्त्रीलिंग धारण करता था। अिस ज़मानेमें भाषाकी जो ख़राद व तराश हो गयी अुससे यह अेक आम रिवाज-सा हो गया कि ज़बानकी दुरुस्तीके नामपर फ़ारसियतकी कसरतसे ज़बानको ज़्यादा मुश्किल बनाया जाये। अिसका नतीजा यह हुआ कि अुर्दू आम लोगोंकी ज़बान न होकर अेक ख़ास अदबी और शहरी फ़िरक़े की ज़बान बन गयी। नयी बहरें मसलन् 'वासोख़्त' 'मुस-ल्लस' वग़ैरह ज़बानमें दाख़िल हो गयीं। 'हजो' और 'क़सीदे' को खास मर्त्तबा हासिल हुआ। ग़ज़लोंको आम लोगोंकी मक़बूलियत (पसंदगी) मिल गयी। अुर्दू और फ़ारसी शायरोंके बहुतसे तज़्किरे (अितिवृत्त) फ़ारसी ज़बानमें तैयार हो गये जिनमें 'मीर' का निकातुश्शुअरा' और 'हसन' का 'तज़्किराअे शुअराअे अुर्दू' बहुत मशहूर हैं।

सौदाः—

(स.१७१३-१७८६ अी.) मिर्ज़ा मुहम्मद रफ़ीअ 'सौदा' दिल्लीके रहनेवाले थे। अिन्होंने खाँ आरज़ूके सत्संगसे बहुत कुछ लाभ अुठाया।

पहले यह फ़ारसीमें शायरी करते थे मगर खाँ साहबने अिन्हें समझाया कि 'अगर तुम अपने कलामको आम व ख़ासमें मक़बूल (पसन्द किया गया) कराना चाहते हो तो अुर्दू लिखा करो।' बात ठीक भी थी। थोड़ी सी मेहनतसे प्रसिद्धि पानेके लिये अुस वक्त अुर्दू बिलकुल मौज़ूँ थी। 'सौदा' झट मान गये और अुन्होंने अुर्दूकी तरफ़ तवज्जुह फ़रमायी और अैसी फ़रमायी कि अुसके बादशाह बन बैठे। अिन्हें अुर्दूका 'ख़ाक़ानी' और 'अनवरी' (फ़ारसीके बहुत मशहूर शायर) कहना बजा होगा।

यह शाह हातिमके शागिर्द थे। लेकिन शायरीके आसमानमें अिनकी रोशनी अितनी तेज़ीसे फैल गयी कि वह आफ़ताब (सूर्य) मालूम होने लगे और अुनके सामने शाह हातिम अेक टिमटिमाता सितारा लगने लगे। यह अितने मशहूर हो गये कि शाह आलम बादशाह भी, जो 'आफ़ताब तख़ल्लुस करते थे, अिनके शागिर्द बन गये। मगर अिनकी खुददारी (स्वाभिमान) की वजहसे अुनके साथ ज़्यादा अर्से तक यह न रह सके। शाही मुलाज़िमतके छूट जाने पर भी वह बसंतखाँ वगैरह रअीसोंकी मददसे आराम-से रहते थे। दिल्ली छोड़कर बाहर जानेका अिनका मंशा न था, यहाँ तक कि लखनअूके नवाब शुजाअुद्दौलेके बुलाने पर भी वह वहाँ न गये। लेकिन अपने दोस्तोंके चल बसनेके बाद अुन्हें मजबूरन दिल्ली छोड़नी पड़ी। साठ वर्षकी अुम्रमें वह लखनअू चले गये और वहीं दफ़न हुअे। वहाँ अिन्हें छः हज़ार रुपये सालाना मुशाहरा मिलता था। नवाबसे अिन्हें 'मलिकुश्शुअरा' का ख़िताब भी मिला था।

सौदाको अिस बातका फ़ख्र हासिल है कि अिनका कलाम अिनकी ज़िन्दगी ही में मशहूर हो गया था। अिनके 'दीनाने रेख्ता' में गजल, रुबाअी मुस्तज़ाद, क़िता, पहेली, वासोख्त, तरजीहबंद, मुख़म्मस वगैरह कई तरहकी कविताअें हैं मगर फिर भी क़सीदा और हजो अिन दो प्रकारोंमें वह बेजोड़ रहे। आज तक अिस विभागमें अुनकी बराबरीका कोअी कवि नहीं हुआ है। अुनकी हजोंमें चुलबुलापन और ताना बहुत ज़ोरदार है। मगर कभी कभी वह बेशर्मीके दर्जे तक पहुँच जाता है।

ज़बानकी दुरुस्तीमें अिनका बहुत बड़ा हाथ है। जो बुनियादें वली और शाह हातिमने कायम की थीं अुन्हींपर सौदाने अपना रफीअ (बलन्द) और शानदार महल तैयार किया। अिन्हें ज़बानपर पूरी कुदरत (प्रभुत्व) और शेरपर पूरी हुकूमत हासिल थी। अिनका कलाम बिल्कुल साँचेमें ढला हुआ मालूम होता है। लफ़्ज़ोंको अपने मुकामपर अैसा रखते हैं मानों अँगूठी में नगीने जड़े गये हों। अगर कोअी लफ़्ज़ भूल जाय तो अुसकी जगहपर दूसरा लफ़्ज़ नहीं रखा जा सकता। अिन्होंने हालाँकि हिन्दीका बिल्कुल बहिष्कार नहीं किया है फिर भी अुनकी दृष्टिसे अुर्दूमें हिन्दीके जो शब्द खट-

कते थे अुन्हें अुन्होंने चुन-चुनकर निकाल बाहर किया है। कुछ लोगोंकी राय में सौदाने फ़ारसी और हिन्दीके मिलापसे अेक ऐसी जबान पैदा की जिसे अवामकी मक़बूलियत हासिल हुअी। ख़यालोंकी बलन्दी और नज़ाकतको मद्देनज़र रखते हुअे हम यह कह सकते हैं कि वह अुर्दूके 'स्पेन्सर' थे।

अिनके कलामकी सबसे बड़ी कमी यह है कि अुसमें तसव्वुफ़की चाशनी नहींके बराबर है जिससे वह ज्यादह देर तक दिलमें घर नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि अुनकी ग़ज़लोंमें सोज़ (जलन) गुदाज़ (कोमलता) और सादगी नहीं पायी जातीं जो ग़ज़लकी जान हैं। हकीक़तमें ग़ज़लगोअी अुनकी प्रकृतिके विरुद्ध ही थी।

मिर्ज़ाकी तसनीफ़ें यह हैं:—

(१) फारसीका मुख्तर दीवान। (२) चन्द फ़ारसी क़सीदे। (३) अुर्दूका मुकम्मिल दीवान। (४) अुर्दू शायरोंका तज़किरा तथा बहुत-सी मसनवियाँ, क़सीदे वग़ैरह। अेक किताब 'अिबरतुल ग़ाफ़िलैन' नामकी अिन्होंने 'मकी' कविकी आलोचनामें लिखी है।

अिनकी ज़बान साफ़, सादा, चुस्त और मीठी है। अरबी और फारसी शब्दोंको कसरतसे अिस्तेमाल करने पर भी अुसमें पढ़नेवालोंके दिलको खींचने की ताक़त है। कलामका नमूना देखिये:—

जो गुज़री मुझ पै मत अुससे कहो हुआ सो हुआ।
बिलाकुशाने मुहब्बत पै जो हुआ सो हुआ॥
मुबादा हो कोअी ज़ालिम तेरा गरेबाँगीर।
मेरे लहूको तु दामनसे धो हुआ सो हुआ॥
पहुँच चुका है सरेज़ख्म दिल तक यारो।
कोअी सेव कोअी मरम करो हुआ सो हुआ॥
कहे है सुनके मेरी सरगुज़श्त वह बेरहम।
यह कौन ज़िक्र है जाने भी दो हुआ सो हुआ॥
यह कौन हाल है अहवाले दिल पै अै आँखो।
न फूट-फूटके अितना बहो, हुआ सो हुआ॥

दिया अुसे दिल व दीं अब यह जान है **सौदा** ।
फिर आगे देखिये जो हो सो हो, हुआ सो हुआ ॥

किया कलाम यह **सौदा**से अेक ग़ाफ़िलने-
किसीसे रब्त कोअी ज़ेरे आसमाँ न करे ॥
किया तो तजु़र्बा अुन दोस्तोंको बद पाया ।
बदीका जिन प' किसी तरह दिल गुमान न करे ॥
यह सुनके अुससे कहा मुस्कराके **सौदा**ने ।
शिकायत अितनी किसीकी कोअी बयान न करे ॥
भले बुरे के तुझे अिम्तहानसे क्या काम ।
यह शुक्र कर कि तुझे कोअी अिम्तहाँ न करे ॥

मीरः—

(**स० १७२०-१८०६ अी०** **तकरीबन**) मीर मुहम्मद तक़ी 'मीर' दिल्लीके रहने वाले थे: पर पेटकी फ़िक्रने अिन्हें लखनअू घसीटा। खाँ आरज़ूके यह भाँजे थे जिनके यहाँ रहकर अिन्होंने अिब्तदाअी तालीम हासिल की थी। जब तक दिल्लीमें थे, शाही दरबार और अमीर अुमराकी महफिलोंमें अिनकी बड़ी अिज्जत और कद्र थी। मगर शाह आलमका खजाना खाली था और अिनका खुददार मिजाज अिन्हें किसीकी चापलूसी करनेकी अिजाज़त न देता था: जिससे मजबूर होकर स. १७८३ अी- में यह लखनअू चल दिये। पर वहाँ भी अिनकी बददिमागीने नबाब आसफ़ुद्दौलाके साथ झगड़ा कर लिया और यह अपनी ज़िन्दगी फ़िक्र और मिस्कीनी (दरिद्रता) में बिताते रहे। अिनकी सारी ज़िन्दगी सोज़ व गुदाज़से भरी हुअी है, जिसका अुनके कलाम पर भी पूरा पूरा असर पड़ा।

सौदाके बाद 'अुर्दू जबानके सबसे बड़े शायर' मीर ही हैं। लेकिन कुछ लोगोंकी रायमें 'मीर' का दर्जा 'सौदा' से बढ़ा चढ़ा है। जो हो, हम तो समझते हैं कि दोनोंका महत्व अेक-सा ही बड़ा है। मीरमें खुद-पसन्दी बेहद थी जिसकी छाप अुनकी कवितामें जा-बजा मिलती है। अिन्होंने 'अजगर

नामा' नामकी अेक मसनवी लिखी है जिसमें दिल्लीके शायरोंके खिलाफ़ बहुत गर्द व गुबार अुड़ाया है। अिसकी आड़में भी अुनकी अिन्तहा दर्जेकी खुददारी ही है। यह खुद अपनेको और सौदाको पूरा शायर मानते थे और दर्दको आधा। किसीने पूछा, और 'सोज़?' वह बोले, 'क्या सोज़ भी शायर है? खैर तो अुसे भी समझ लो पाव!" अिस तरह अुनकी दृष्टिसे कुल शायर हो गये पौने तीन!

अिनके कलामकी ज़बान निहायत शुस्ता (शुद्ध) साफ़, सादा, फ़सीह, तीर व नश्तरका काम करनेवाली और असरसे ममलू (परिपूर्ण) है। बयान अैसा पाकीज़ा और दिलावेज़ (मनोहर) है, जैसे बातें करते हैं। ओज और प्रसादगुणके साथ साथ करुणारसका भी अच्छा परिपाक हुआ है। छोटी छोटी बहरोंमें काव्यामृत भर देनेकी कलाके तो वह बादशाह थे। अिसीलिये अुन्हें अुर्दूके 'शेख सादी' कहते हैं। अिनके कलाममें दिलकशी और ज़ोर कूट-कूटकर भरे हुअे हैं। अुर्दू वासोख्त, मुसद्दस और मुरब्बा अिन तीन काव्यप्रकारोंके संशोधक मीर ही हैं। अिनके कलाममें कहीं कहीं फ़िज़ूल और फ़हश (अश्लील) लफ्ज़ भी आये हैं।

अिनकी तसनीफें कसरतसे हैं। वैसे तो अिनके दीवानमें ग़ज़ल, रुबाअी, मुस्तज़ाद, क़िता, मुसद्दस, वासोख्त, मुरब्बा वग़ैरह शायरीकी बहुत-सी क़िस्में मौजूद हैं मगर फिर भी मीरका नाम रोशन किया ग़ज़लों ही ने है। अिनकी ज़िन्दगीमें ही अिनकी ग़ज़लें अितनी मशहूर हो गयीं कि लोग तोहफ़े के तौरपर अिनकी ग़ज़लें ले जाया करते थे। अिनके रेख्तेके छह दीवान हैं जिनमें क़िस्म-क़िस्मकी नज़्में हैं। अेक दीवान फ़ारसीका भी है। मसनवियाँ बहुत-सी हैं जिनमें 'अजगरनामा,' 'शोलअे अिश्क़,' 'जोशे अिश्क़', 'दरियाअे अिश्क़', 'ख्वाबो खयाल', वगै़रह मशहूर हैं। कुत्ता, बिल्ली, बरसादत आदि पर भी बहुत-सी मसनवियाँ हैं। फारसी ज़बानमें अुर्दूके शायरोंका अेक तज-'निकातुश्शुअरा' नामक अिन्होंने स. १७५२ अी. में लिखा था जो बहुत मशहूर है। यक़ीनन् अुर्दूके अुन अिनेगिने शायरोंमें मीरका शुमार किया जायगा जिनके नाम अुर्दूकी तारीखमें पहले सफ़े पर लिखे जायँगे।

मीर और सौदाका मुक़ाबलाः—

जैसा कि हज़रत ख्वाजा बासतने फ़रमाया है, 'मीर साहबका कलाम 'आह' है और मिर्ज़ाका 'वाह'। जो फ़र्क़ दोनोंकी ज़िन्दगियोंमें पाया जाता है वही अुनके कलाममें मौजूद है। मीरको कभी हँसनेका मौक़ा नहीं मिला और मिर्ज़ाको रोनेकी कभी नहीं सूझी। हमेशा नाखुशी, रोना-धोना और दुनियासे अुदास रहना मीरकी ख़ासियत है। यही नाअुम्मेदी और यास (निराशा) अुनकी ग़ज़लोंकी जान है। अिन्हींसे अुनका कलाम ज़ोरदार और पुरअसर हुआ है। और अिसीकी वजहसे शायरी और ज़बानदानीमें वह अपना सानी हीं रखते थे। अिसके बरख़िलाफ़ सौदा हमेशा खुश और अैश व अिशरतमें मस्त रहते थे जिससे अुनके कलाममें दिलबहलावके वास्ते काफ़ी सामान मौजूद था।

यह तो फ़र्क़ हो गया, मगर दोनोंमें अेक मुताबिक़त (साम्य) भी है। वह यह कि दोनोंने दिलोजानसे अुर्दू ज़बानकी तरक़्क़ीमें हाथ बँटाया। दोनों अपने ज़मानेमें बेनज़ीर (अनुपम) और लासानी थे, अितना ही नहीं बल्कि अुनके बाद भी अुनके सरीखा कोअी नहीं हुआ। फ़ारसीकी मिलावटसे ज़बान में शीरीनी और ज़ायका पैदा करनेका काम दोनोंने अेकसा ही किया। असल में देखा जाय तो मीर और सौदाने ही ज़बानको अदबियतके तख़्त पर बिठा दिया। मिर्ज़ाकी क़ाबलियत अिस आला दर्जेकी थी कि अुन्होंने जो चीज़ें ज़बानमें दाख़िल कीं वह फ़ौरन मक़बूल हो गयीं। मीर और सौदाने अपने बाद आनेवालोंके वास्ते तरक़्क़ीकी राहें खोल दीं। अिनके बारेमें ख्वाजा 'बासत' के यह दो शेर याद रखनेके क़ाबिल हैं।

सिरहाने '**मीर**' के आहिस्ता बोलो।
अभी टुक रोते रोते सो गया है ॥ १ ॥

'**सौदा**' की जो बालीं प' गया शोरे क़यामत।
खुद्दामें अदब बोले अभी आँख लगी है ॥ २ ॥

मीरके कलामका नमूना देखिये:—

अिन्तदाये अिश्क़ है, रोता है क्या ?
आगे आगे देखिये, होता है क्या ?
क़ाफ़िले में सुबहके अिक शोर है।
यानी ग़ाफ़िल हम चले सोता है क्या ?
सब्ज़ होती ही नहीं यह सरज़मीं।
तुख़्मे ख्वाहिश दिलमें तू बोता है क्या ?
यह निशाने अिश्क़ हैं जाते नहीं।
दाग़ छातीके अबस धोता है क्या ?
ग़ैरते यूसूफ़ है यह वक़्ते अज़ीज़।
'**मीर**' अिसको रायगाँ खोता है क्या ?

—*—

जो अिस शोरसे '**मीर**' रोता रहेगा।
तो हमसाया काहेको सोता रहेगा ॥
मैं वह रोनेवाला जहाँसे चला हूँ।
जिसे अब्र हर साल रोता रहेगा ॥
मुझे काम रोनेसे अक्सर है नासिह।
तु कब तक मेरे मुँहको धोता रहेगा ॥
बस अै गिरया आँखें तेरी क्या नहीं हैं ?
जहाँको कहाँ तक डुबोता रहेगा ?
मेरे दिलने वह नाला पैदा किया है।
जरसका भी जो होश खोता रहेगा ॥
बस अै '**मीर**' मिज़गाँसे पूछ आँसुओं को।
तु कब तक ये मोती पिरोता रहेगा ? ॥

दर्द

(स. १७१७—१७८३ अी.) ख्वाजा मीर मियाँ साहब 'दर्द' दिल्लीके रहनेवाले थे। अट्ठाअीस वर्षकी अुम्रमें वालिदके कहनेसे दरवेश बन गये। अिन्होंने बहुत छोटी अुम्रमें

शुहरत पायी। दुर्रानी और मरहठोंके हमलोंके बावजूद दिल्लीको न छोड़नेवाले सिर्फ़ यही मशहूर बहादुर शायर थे। सब्र और तवक्कुल (ईश्वर पर भरोसा रखना) तथा सन्तोष और तसलीम इनमें कूट कूटकर भरे हुए थे। तसव्वुफ़को इनसे बेहतर किसीने नहीं कहा है। इनकी तबियतमें आज़ादी, खुददारी और पाकीज़गी इस दर्जेकी थीं कि किसीकी मदह (स्तुति) या तारीफ़से इन्होंने अपनी क़लमको आलूदा (लथपथ) नहीं किया।

इनकी ज़बान साफ़, सुगम, सुलझी हुई और हर शख्सकी समझमें आसानीसे आनेवाली है। दर्द व असर उसमें कूट कूटकर भरा हुआ है। इनकी बहुत-सी तस्नीफें फ़ारसीमें हैं। मसलन् 'इसरार उस्सलाता', वारदाते दर्द', 'नालऐ दर्द' 'शमअे महफ़िल' वग़ैरह। उर्दूमें सिर्फ़ एक छोटा-सा दीवान है जिसे उर्दू शायरीके ताजका सबसे चमकीला हीरा समझना चाहिये। फ़ालतू या भरतीकी ग़ज़लें उसमें नहीं हैं। अश्लीलता और छिछोरापन कहीं भी नहीं मिलता। हँसी उड़ाना और इश्क़ मिज़ाजीको बेहूदा समझते थे। इन्होंने कोई क़सीदा या हजो नहीं लिखी। यह शिष्टाचारके सख्त पाबन्द थे। सौदा इनसे बड़ी इज़्ज़त व मुहब्बतसे पेश आते थे।

कलामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाइयेः—

जगसे आकर इधर उधर देखा, तू ही आया नज़र जिधर देखा॥
जानसे हो गये बदन खाली, जिस तरफ़ तूने आँख भर देखा॥
नाला फ़रयाद आह और ज़ारी, आपसे जो हो सका सो कर देखा॥
उन लबोंने न की मसीहाई, हमने सौ सौ तरहसे मर देखा॥
ज़ोर आशिक़ मिज़ाज है कोई, 'दर्द' को क़िस्सा मुख्तसर देखा॥
आतिशे इश्क़ जी जलाती है। यह बला जान ही पे आती है।

—:*:—

तू है और सैरे बाग़ हर वक़्त। दाग़ है और मेरी छाती है।
टुक ख़बर ले कि हर घड़ी हमको। अब जुदाई बहुत सताती है।
कुछ मुनासिब नहीं है क्या कहिये। जीमें जो कुछ कि अपने आती है।

सोज़ः—

(स. १७१७–१७६८ अी.) सैयद मुहम्मद मीर 'सोज़' दिल्लीके रहने वाले थे मगर मआश (आजीविका) की तलाशमें अिन्हें पहले फ़र्रुखाबाद और वहाँसे लखनअू जाना पड़ा। जवानीमें रंगीं तबियतकी वजहसे अिनका पैर फिसल गया था मगर बुढ़ापेमें यानी स. १७७७ अी. के क़रीब यह दरवेश बने। घुड़सवारी, शस्त्र चलाना, धनुर्विद्या आदि कलाओंमें यह अच्छी तरह पारंगत थे। शरीरसे बलिष्ठ, ताक़तवर और दिलसे मिलनसार, विनोदप्रिय तथा विनीत थे। वह नवाब आसफुद्दौलाके काव्यगुरु थे।

अिनका अेक दीवान है जिसमें ज़्यादातर ग़ज़लें, मसनवियाँ, रुबाअियाँ और मुखम्मस है। अिनके कलाममें फ़ितरतीपन बहुत है क्योंकि अिनकी कवित्त्व-शक्ति अीश्वरदत्त थी। ज़बान साफ़, मुहावरेदार, सादा और नॅचरल होनेसे अुसमें प्रसादगुण बहुत है। अिसलिये वह आम व ख़ासमें काफ़ी मक़बूल हो गये। शृंगार रस पर अिनकी कविता बहुत ही अूँचे दर्जेकी हो गयी है। अपने कलाममें सीधे सादे हिन्दी लफ्ज़ बेसाख़्तगी (सहजतासे) बाँध गये हैं।

अिनकी शुहरतकी ख़ास वजह अुनका शेर पढ़ना थी। अुनकी आवाज़ मीठी होनेसे ग़ज़लके लिये मौज़ूँ थी। अपने मतलबको ज़ाहिर करनेमें वह आँख, नाक, हाथ, गर्दन वग़ैरह हर हिस्सेसे काम लेते और खुद मज़मूनकी सूरत बन जाते। यह अुर्दू ग़ज़लोंके शेख़सादी कहे जाते थे। कलामका नमूना देखियेः—

मेरा जान जाता है यारो बचालो।
कलेजा में काँटा गड़ा है निकालो॥
न भाओी मुझे जिन्दगानी न भाओी।
मुझे मार डालो मुझे मार डालो॥
ख़ुदा के लिये मेरे अै हमनशीनों।
वो बाँका जो जाता है अुसको बुला लो॥

अगर वह ख़फ़ा होके कुछ गालियाँ दे।
तो दम खा रहो कुछ न बोलो न चालो॥
न आवे अगर वह तुम्हारे कहे से।
तो मिन्नत करो घेरे घेरे मना लो॥
कहो एक बन्दा तुम्हारा मरे है।
अुसे जाने कुन्दनसे चलकर बचा लो॥
जलोंकी बुरी आह होती है प्यारे।
तुम अुस **सोज़** की अपने हक़में दुआ लो॥

हुआ दिलको मैं कहता कहता दिवाना।
पर अुस बेख़बरने कहा कुछ न माना॥
कोअी दम तो बैठे रहो पास मेरे।
मियाँ! मैं भी चलता हूँ टुक रहके जाना॥

हसनः—

(स. १७२५–१७८६ अी.) मीर गुलाम हसन 'हसन' का जन्म दिल्लीमें हुआ था। ख़्वाजा दर्दसे अिसलाह (संशोधन) लेते थे। अिन्होंने किसीको अपना शागिर्द नहीं बनाया, यहाँ तक कि अपने बेटे ख़लीक़को भी '**मुसहफ़ी**' के सिपुर्द कर दिया था। अिनके पोते अनीस, मूनिस और अुन्स बहुत ही मशहूर थे जिन्होंने अपने दादाके नामको अच्छी तरह रोशन किया।

अिनके दीवानमें सात हज़ार शेर हैं। यह अेक नामीगरामी शायर, जैयद (विशाल) फ़ाज़िल और मशहूर खुशनवीस (सुलेखक) थे। अरबी कम जानते थे पर फ़ारसीमें कमाल हासिल था। अिनकी मसनवियोंमेंसे अेक 'सिहरुल्बयान' अुर्दू दुनियाकी बहुत ही मशहूर और आला मसनवी है जिसके मुक़ाबलेमें दयाशंकर कौल 'नसीम' की 'गुलज़ारे नसीम' को छोड़ दूसरी कोअी भी मसनवी नहीं टिक सकती। अिनका कलाम निहायत सादा, आशिक़ाना और पुरअसर है। अैसा मालूम होता है मानो मुँहसे फूल झड़ रहे हैं।

कलामका नमूना देखिये:—

वह जब तक कि ज़ुल्फ़ें सँवारा किया। खड़ा अुस प' मै जान वारा किया।
अभी दिलको लेकर गया मेरे आह। वह चलता रहा मैं पुकारा किया॥
क़िमारे मुहब्बतमें बाज़ी सदा। वह जीता किया मै हारा किया।
किया क़त्ल और जान-बख्शी भी की। हसन अुसने अेहसाँ दुबारा किया॥

अिन शायरोंके अलावा अिस ज़मानेमें और भी कअी शायर हुअे लेकिन चूँकि वह कसरतसे हैं और अुनमें कोअी ख़ास बात नहीं थी अिसलिये अुनका ज़िक्र करना फ़िज़ूल है। फिर भी ख्वाज़ामीर 'असर', मीर ख़ाँ 'कमतरीन', मीर ज़ाहक, मीर मेहदी हसन, 'फ़िराग' शेख़ कायमअली 'क़ायम', मिर्ज़ा फ़ाख़िर 'मिकीं', बक़ाअुल्ला खाँ 'फ़िदवी' वग़ैरह नाम याद रखने लायक़ हैं। वैसे तो अिनके कलाम बहुत अच्छे हैं मगर मीर और सौदाके सामने यह फीके पड़ गये।

अध्याय पाँचवाँ

अिन्शा, जुरअत और मसहफ़ी

तमहीद अिस अहदमें अुर्दूकी नज़्म शाही दरबारके साथ वाबिस्ता (सम्बद्ध) हो गयी जिसका अमली नतीजा यह हुआ कि वह रानीसे दासी बन गयी । अिससे पहले भी तो शायरोंकी दरबारोंमें क़द्र होती थी, मगर अुस वक़्तकी शायरी आज़ाद थी । पुराने ज़मानेके शायरोंमें खुददारी और अिज़्ज़त-आबरूका जो अिन्तहा दर्जेका (बेहद) खयाल था वह अिस ज़मानेके शायरोंमें नहीं था । अिस ज़मानेके शायरोंने शायरीको धन कमानेका अेक कामयाब तरीका बना दिया था जिससे अुनका यह मक़सद बन गया कि किसी भी तरह हो अमीरों और रअीसोंको खुश किया जाय । यह तो सभी जानते हैं कि अिस ज़मानेका लखनअू कितना रंगीं, अैशपरस्त और आरामतलब था । यहाँके बदअिख्लाक़ (बदचलन) और बदकार (दुराचारी) नवाबों और रअीसोंकी मुलाज़िमतके वास्ते शायरोंमें सख़्त रक़ाबत और गालीगलौज चलती थी । अिससे पता चलता है कि वे कितने गिर गये थे ।

अिसका नतीजा ज़वाल (अवनति) और नुज़ूल (पतन) के अलावा और क्या हो सकता है ? अिस वक़्तके कलाममें पहलेकी जैसी अुम्दगी, दृढ़ता या पाकीज़गी नहीं पायी जाती । खयाल भी आला दर्जेका नहीं है । आयन्दाकी तरक्क़ीकी राहोंमें रुकावट पड़ गयी, रूहानियत और बलन्दपरदाज़ी गुम हो गयीं और शायरी दुनियावी झगड़ों तक ही सीमित रह गयी । अब शायरोंके सामने 'माशूक़' के तौरपर या तो खूबसूरत लौंडा रहने लगा या बाज़ारी औरत । शहवाती (कामोत्तेजक) ज़ज़्बे (कामनाअें) बेतकल्लुफ़ी के साथ कसरतसे कवितामें आने लगे । और अिसी वक्त रेख़्तीकी भी अीजाद हो गयी । रेख़्तीके मानी हैं औरतोंकी खास बोलीमें की गयी शायरी । यह

गन्दे मज़ाक़का अेक बदतरीन नमूना है। भद्दापन और बेहूदापनके सिवाय अुसमें कुछ भी नहीं था। अिसी ज़मानेमें जानी, चिरकीं, अफ़सक़ आदि अुर्दूके भद्द परिहासके काव्य लिखनेवाले शायर गुज़रे हैं। यह कहना बजा होगा कि अिस समयके शायरोंने कलम रखकर लाठी और पोंगे लिये और अेक दूसरेकी जान, अिज़्ज़त व आबरूके पीछे पड़ गये। लेकिन यह बात याद रखनेके क़ाबिल है कि यह सारा फूहड़पन ज्यादहतर लखनअू और अुसके आस पास ही हुआ। खुद देहलीमें अिसका असर ज्यादा नहीं पाया जाता है। वहाँ पाकीज़गी और संजीदगी (गंभीरता) अुसी तरह क़ायम रही जैसे कि पिछले अहदमें थीं।

ज़बानके लिहाज़से देखा जाय तो कुछ तसल्ली ज़रूर हो जाती है। हालाँकि नित, टुक, अँखड़ियाँ, जिन्होंके, पौन, अधर, शर्मातियाँ, वग़ैरह लफ़्ज़ अब भी चलते रहे फिर भी बहुतसे पुराने शब्द अब ज़बानसे हट गये। फ़ारसीका असर बढ़ता जाता था, मगर साथ साथ हिन्दीके अच्छे अच्छे शब्दोंका भी जान-बूझकर बहिष्कार नहीं किया गया। मसहफी और जुरअत तो पुरानी लकीरके फ़कीर थे पर अिन्शाने अुर्दूका फैलाव और तरक्क़ीके वास्ते बहुत-सी नयी-नयी तरकीबें अीजाद कीं। अिन्शा जैसी आला दिमाग़ हस्ती (व्यक्ति) की वजहसे यह अहद अुर्दूकी तारीख़में अेक ख़ास ओहदा रखता है।

अिन्शा :—

(मृत्यु-स. १८१७ अी. में) सैयद अिशाअल्ला खाँ 'अिन्शा' का जन्म मुर्शिदाबादमें हुआ था। अिनके वालिद माशाअल्ला खाँ 'मसदर' अेक नामी शायर थे। जो सल्तनतके ज़वालके ज़मानेमें दिल्लीसे मुर्शिदाबाद चले गये थे जहाँ अिन्शाकी पैदाअिश हुअी। अिनके वलादत (जन्म) की तारीख़ मालूम नहीं है। अिन्हें बचपनमें ही शेर व शायरीका शौक़ हो गया। कुछ रोज़तक अपने पितासे ही अिसलाह लेते रहे। वालिदकी मौतके बाद किसीको अुस्ताद नहीं बनाया। जवानीमें मुर्शिदाबादसे दिल्ली चले आये। अिस वक़्त दिल्लीके तख़्तपर शाहआलम

थे जो शायरोंके बड़े क़द्रदाँ थे और खुद भी 'आफ़ताब' तखल्लुस करके शेर कहा करते थे। अिन्होंने अिन्शाकी बहुत क़द्र व अिज़्ज़त की मगर अुनका खज़ाना खाली था, अिसलिये अिन्शाको लखनअूकी राह देखनी पड़ी। लखनअू जाकर अुन्होंने मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहकी मुसाहिबत अख्तियार की। थोड़े अर्सेके बाद वे वहाँसे नवाब सआदत अली खाँके दरबारमें पहुँच गये। हँसी, मज़ाक और क़िस्सा-कहानियोंसे नवाबके दिलबहलावका काम करने लगे। अिसी हँसी-मजाक़में वह कुछ अैसे लफ़्ज़ बोल गये जिससे नवाब मज़कूर सख़्त नाराज़ हो गये और अिन्हें दरबारसे हटा दिया। अिससे वह आखिरी अुम्रमें सूखी रोटीको भी मुहताज हो गये और शायद अिसीलिये पागल बन गये।

अिन्शाको ज़बानपर बड़ी कुदरत हासिल थी। और अिसीके ज़ोरपर वह ज़बानकी अिसलाह और तरक़्क़ीका सौदाका काम अच्छी तरह जारी रख सके। मज़ाक़ व ज़राफ़त (हास्य) में वह सौदाकी बराबरीके थे। चाहे जिस क़िस्मका मज़मून हो, वह अुसे अपने रंगमें ढालकर ही रहते। अपने अिल्म व फ़ज़लके लिये वह बहुत मशहूर थे। अपने दावेके लिये वह अितने और अैसे ज़बर्दस्त सबूत पेश करते थे कि हरीफ़ (विरोधी) देखते ही रह जाते। वह निहायत ज़हीन और खुशमिज़ाज शख़्स थे। फ़ारसी और अरबी ही नहीं बल्कि दूसरी ज़बानोंके भी ज़बर्दस्त फ़ाज़िल थे। अिनकी शैली बहुत मुश्किल थी। अिनकी आला क़ाबिलियत और अीजादकी कूवत देखकर अमीर खुसरो की याद आती है। अिनमें खामियाँ भी कुछ कम नहीं थीं। सबसे बड़ी खराबी अुनमें यह थी कि अुन्हें मुनासिबतका सही अन्दाज़ न था जिससे आखिरी अुम्रमें नवाबके साथ झगड़ा हो गया और ज़िन्दगीकी शाम हसरतके बादलोंसे अुदास हो गयी। काश, अिन्शा शायर न होकर अेक फ़िलसुफ़ होते! अुनके बारेमें जो यह कहा जाता है कि 'अिन्शाके अिल्मवफ़ज़लको अुनकी शायरीने खोया और अुनकी शायरीको नवाब सआदत अली खाँकी दरबारदारीने डुबोया' बिलकुल सच है। अिनकी प्रतिभापर अगर मुसाहिबतका अंकुश न चलता तो शायद, नहीं यक़ीनन्, हम अिन्शाको अुर्दू शायरीका सबसे दिलकश और रोशन तारा पाते।

ञिनकी तसनीफ़े काफ़ी तादादमें हैं। ञेक कुल्लियात है जिसमें अुर्दू, फ़ारसी ञौर रेख़्तीके दीवान हैं। ञिसमें कहीं कहीं शायरीके क़वायदकी ख़िलाफ़वरज़ी भी हो गयी है, जिसकी वजह अुनकी तबियतकी मस्ती ही मालूम होती है। ञिनकी बहुत-सी मसनवियाँ कुल्लियातमें मिलती हैं। 'मसनवी बे नुक्त' 'शिकारनामा' वग़ैरह मसनवियाँ ज़्यादा मशहूर हैं। ञिन्शाकी हजोञें बहुत ही तीखी, तीर व नश्तरका काम करनेवाली होती हैं। ञपने ज़मानेमें वह ञिन हजोञोंके लिये ही मशहूर थे। ञिन्होंने ञेक किताब 'रानी केतकी की कहानी' ठेठ हिन्दी ज़बानमें लिखी है जिसने अुन्हें हिन्दी नस्र (गद्य) के निर्माताञोंमें ञूँचा स्थान बख़्शा है। ञिस कहानीमें क़सम खाकर ञेक भी अुर्दू शब्दको नहीं ञाने दिया है।

ञिन्शाकी सबसे महत्त्वकी किताब है, 'दरियाञे लताफ़त'। यह अुर्दूकी पहली क़वायद है जो हिन्दुस्तानी ञादमीने लिखी है। ञिसकी ज़बान फ़ारसी है ञौर ञिसकी तसनीफ़में 'मिर्ज़ा क़तील' भी शरीक थे। क़दीम अुर्दू ग्रामर की हैसियतसे यह निहायत क़ीमती चीज़ है। ञिसमें मतरूक शब्दोंको देकर जो लफ़्ज़ रिवाजमें थे अुनको बयान किया है। दूसरी ज़बानोंका अुर्दूपर जो ञसर पड़ा है अुसका विवेचन करके अुर्दू बोलनेवालोंकी मुख़्तलिफ़ ज़बानोंके नमूने भी दिये हैं। ञाज भी यह किताब पढ़नेके क़ाबिल है। हालाँकि यह क़वायदकी किताब है फिर भी ञिसमें जगह जगह पर मज़ाक़ व ज़राफ़तको जगह मिल ही गयी है जो अुनका ज़ाती जौहर था।

बहुत बड़े फ़ाज़िल होनेकी वजहसे ञिन्शाकी ज़बान चुस्त, साफ़-सुथरी, दिलकश, मगर मुश्किल ञौर पेचीदा थी। कलामका नमूना देखिए:—

मुझे छेड़नेको साक़ीने दिया जो जाम अुलटा।
तो किया बहक के मैंने अुसे ञिक सलाम अुलटा॥
बढ़ूँ अुस गलीसे क्योंकर कि वहाँ तो मेरे दिलको।
कोञी खींचता है ञैसा कि पड़े हैं गाम अुलटा॥
नहीं ञब जो देते बोसा तो सलाम क्यों लिया था।
मुझे ञाप फेर दीजिये वह मेरा सलाम अुलटा॥
मुझे क्यों न मार डाले तेरी ज़ुल्फ़ अुलटके काफ़िर।

कि सिखा रक्खा है तूने अुसे लफ्ज़े राम अुलटा ॥
निरे सीधेसादे हम तो भले आदमी हैं यारो ।
हमें कज जो समझे सो खुद वल्द अुल् हराम अुलटा
तू जो बातोंमें रुकेगा तो यह जानूँगा कि समझा ।
मेरे जान व दिलके मालिकने मेरा कलाम अुलटा ॥
फ़क़त अिस लिफ़ाफ़े पे है कि ख़त आशनाको पहुँचा ।
तो लिखा है अुसने **अिन्शा** यह तेरा ही नाम अुलटा ॥

कमर बाँधे हुअे चलनेको याँ सब यार बैठे हैं ।
बहुत आगे गये बाक़ी जो हैं तैयार बैठे हैं ॥
न छेड़ो अे निकहत बादे बहारी राह लग अपनी ।
तुझे अठखेलियाँ सूझी हैं हम बेज़ार बैठे हैं ॥
तसव्वुर अर्शपर है और सर है पाये साक़ी पर ।
गर्ज़ कुछ और धुनमें अिस घड़ी मैख़्वार बैठे हैं ॥
यह अपनी चाल है अुफ़्तादगीसे अब कि पहरों तक ।
नजर आया जहाँपर सायासे दीवार बैठे हैं ॥
भला गर्दिश फ़लककी चैन देती है किसे **अिन्शा** ।
ग़नीमत है कि हमसूरत यहाँ दो चार बैठे हैं ॥

जुरअत :--

मृत्यु-- (स. १८१० अी.) अिनका असली नाम यहिया अमान था पर यह शेख़ कलंदर बख़्शके नामसे मशहूर थे और 'जुरअत' तख़ल्लुस करते थे । यह मिर्ज़ा जाफ़रअली 'हसरत' के शागिर्द थे । नुजूम (ज्योतिषशास्त्र) मौसीक़ी (गानविद्या) और सितार बजानेसे भी अच्छी तरह वाक़िफ़ थे । यह फ़ैज़ाबाद, बरेली वग़ैरह होते हुअे स. १८०० अी. में लखनअू पहुँचे और मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहके मुसाहिब बन गये । परदानशीं हसीनोंको देखनेके चस्केसे वह झूठमूठके अन्धे बन गये थे मगर अेक दिन भंडाफोड़ हो ही गया । आख़िरी अुम्रमें सचमुच अन्धे बन गये ।

यह किसी भी भाषासे पूरी वाक़िफ़ियत नहीं रखते थे। अरबी-फ़ारसीकी तरफ़ तो अिन्होंने ध्यान नहीं दिया था। लेकिन अिनकी कवित्वशक्ति और स्वानुभव अितने ज़बर्दस्त थे कि सिर्फ़ अुर्दूमें ही अुन्होंने जो कुछ लिखा दिल-आवेज़ और आममें मक़बूल हो गया। यह मसख़रे थे जिससे चारों ओरसे अिनकी माँग रहती थी। अिनका अिश्क़ बाज़ारी और अदना दर्जेका था। अुसमें अश्लीलताकी मात्रा भी काफ़ीं पायी जाती है। अिसलिये निम्न श्रेणीके लोगोंमें अिनकी कविता बहुत पसंद की जाती थी।

अिनका अेक दीवान अुर्दूका और दो मसनवियाँ मिलती हैं जिनमेंसे 'हुस्नोअिश्क़' बहुत मशहूर है। अिस मसनवीमें ख़्वाजा हसन और बख्शी गणिकाकी प्रेम-कहानी है। अिनकी ज़बान साफ़, सादा, लुत्फ़से भरी हुअी मगर कुछ ढीलीढाली-सी है। कलामका नमूना देखिये :—

लग जा गलेसे ताब अब अै नाज़नीं नहीं।
है, है, खुदाके वास्ते मतकर नहीं नहीं॥
पहलूमें क्या कहें जिगर व दिलका क्या है रंग।
किस रोज़ अश्के खूनीसे तर आस्तीं नहीं॥
फ़ुरसत जो पाके कहिये कभू दर्दे दिल सो हाय।
वह बद गुमाँ कहे है कि हमको यक़ीं नहीं॥
आतिश-सी फक रही है मेरे तनबदनमें आह।
जबसे कि रूबरू वह रुख़े आतिशीं नहीं॥
अुसबिन जहाँ कुछ नज़र आता है और ही।
गोया वो आसमाँ नहीं वो ज़मीं नहीं॥
हैरत है मुजको क्योंकि वो 'जुरअत' है चैनसे।
जिस बिन क़रार जी को हमारे कहीं नहीं॥

मसहफ़ी

स, १७४८–१८२४ अी. शेख़ गुलाम हमदानी 'मसहफ़ी' अमरोहा, ज़िला मुरादाबादके रहनेवाले थे। लेकिन मुआशकी तलाशमें स. १७७६ अी. में दिल्ली आये। यहाँ बारह बरस तक

बड़े आरामसे कटी, मगर बादमें सल्तनतके टूट जानेसे लखनअू चले गये। वहाँ मिर्ज़ा सुलेमान शिकोहके दरबारमें रहकर अिन्शासे चोंचें चलाया करते थे।

यह अुर्दू और फ़ारसीके अच्छे शायर थे। यह अपनी ग़ज़लें बेच दिया करते थे जिससे अच्छी-अच्छी ग़ज़लें बिक जाती थीं और अिनके पास रद्दी बच जातीं। यह बहुत जल्दी शेर बनाते थे मानो किसी किताबका तर्जुमा कर रहे हैं। अिनके आठ दीवान अुर्दूके और चार फ़ारसीके मिलते हैं, जिनमें हज़ारों ग़ज़लें, रुबाअियाँ, क़सीदे वग़ैरह मौजूद हैं। अुर्दूके शायरोंका अेक तज़किरा भी अिन्होंने फ़ारसी ज़बानमें लिखा है। कुछ मसनवियाँ भी मिलती हैं। यह किताबें बहुत पढ़ा करते और अुन्हें याद भी रखते थे। नज़्मकी क़वायदके निहायत सख्त पाबन्द थे। अिनकी ग़ज़लें बिलकुल मामूली मालूम होती हैं। अेक शायर की हैसियतसे अिनकी अुतनी कीमत नहीं जितनी कि अेक आला अुस्तादकी हैसियतसे है। अिनके शागिर्दोंमें आतिश, ज़मीर, अैशी, ख़लीक़, तनहा वग़ैरह बहुत ही मशहूर हैं।

हालाँकि यह रहते थे अिंशा और जुरअतके ज़मानेमें मगर अिनकी ज़बान थी मीर और सौदाके ज़मानेकी। यानी क़वायदकी पाबंदी तो थी मगर सफ़ाअी और सादगीका ज्यादा ख़याल नहीं था। अिनकी निजी कोअी भी ख़ुसूसियत नहीं है। कलामका नमूना मुलाहिज़ा हो :—

दिन जवानीके गये मौसिमे पीरी आया।
आबरू ख़्वाब है, अब वक़्ते हक़ीरी आया॥
ताबोताक़त रहे क्या ख़ाक कि अैज़ाके तअीं।
हाकिमे ज़ोफ़से फ़रमाने तग़ीरी आया॥
सबके नाला तो बुलबुलने पढ़ा मुझसे वले।
न अुसे क़ायदअे ताज़ा सफ़ीरी आया॥
दर्द पढ़ने जो अुठा सुबहको सबसे पहले।
मकतबे अिश्क़में होनेको वह मेरी आया॥
चश्मे कमसे न नज़र 'मसहफ़ी' ख़स्ता प' कर।
वह अगर आया तो मजलिसमें नज़ीरी आया॥

अिस अहदके दूसरे मशहूर शायर यह हैं:—सआदत यार ख़ाँ, 'रंगी'

मीर यार अली खाँ, 'जान साहब', शाह आलम सानी (दूसरा) 'आफ़-ताब', मिर्जा सुलेमान शिकोह 'सुलेमान' (आफ़ताबके साहब ज़ादे) बहादुरशाह सानी 'ज़फ़र', 'क़ायम', 'मिन्नत', 'ममनून', 'हसरत', 'क़ुदरत' 'बेदार' 'बयान' 'रासिख' 'हिदायत' वग़ैरह श्रिनमें से 'रंगी' श्रौर 'जान साहब' ख़ास रेख्तीके लिये मशहूर हैं। रेख्ती अश्ली-लता, भद्दा परिहास श्रौर विषय वासनाके रंगमें रँगी हुई कविता है। श्रिस ज़मानेकी बिगड़ी हुश्री सोसाश्रिटी (समाज) का वह बदतरीन आश्रिना है। अिसका प्रचार खूब हो गया था मगर खुशक़िस्मतीसे वह जल्द ही मर गयी।

अध्याय छठा

अेक हिन्दुस्तानी शायर

नज़ीर (अकबराबादी)

स. १७५०-१८३० अी. वली मुहम्मद 'नजीर' अकबराबाद (आगरा) के रहनेवाले थे । लड़कों-को अुर्दू और फ़ारसी पढ़ाकर अुसीसे अपना जीवन-निर्वाह करते थे । अुर्दूकी रस्मी शायरीसे अिनका कोअी ख़ास ताल्लुक नहीं है । बल्कि यूँ कहें तो नामुनासिब न होगा कि अुर्दू ज़बानके दीगर (दूसरे) शायरोंमें और अिनमें ज़मीन व आसमानका फ़र्क है । हालाँकि नज़ीरकी शायरी अुस वक़्तके शाही दरबारों और अमीरोंकी महफिलोंमें ज्यादा अिज्ज़तकी नजरसे नहीं देखी गयी फिर भी आम लोगोंके दिलमें अुसने घर कर लिया था और आज भी वह अुतने ही चावसे देहातों और शहरोंमें पढ़ी जाती हैं । अुर्दूके किसी भी दूसरे शायर-की बनिस्बत नज़ीरको अवाम (जनता) की मक़बूलियत ज्यादा हासिल हुअी ।

अिन्होंने सौदासे लेकर नासिख़ तकका जमाना देखा था, लेकिन अिनका अक्सर कलाम आजकलका मालूम होता है । यह फ़ारसी अच्छी जानते थे और अरबीसे भी कुछ कुछ वाक़िफ़ थे मगर अिनके कलामपर अरबी-फ़ारसी-पनका असर बहुत कम दिखाअी देता है । तबीयतमें आज़ाद-पसन्दी, बेफ़िक्री और सब्र कूट कूटकर भरे हुअे थे । अिसलिये नवाबके बुलानेपर भी यह आगरा छोड़कर लखनअू नहीं गये । अिन्होंने न किसीकी हजो लिखी है न क़सीदा ।

कहते हैं कि जवानीमें यह रंगीं-मिज़ाज थे और अिश्क़ आशिक़ीका भी ज़ौक रखते थे । अिस ज़मानेके अुनके कलाममें भद्देपनका ज़हर मिला हुआ है । लेकिन जब बढ़ती उम्रके साथ यह सूफ़ियाना रंगमें मस्त होने लगे तब

अुनका कलाम भी निहायत आला, क़द्र करनेके क़ाबिल और पुर-असर होता गया। अिन्होंने तक़रीबन् दो लाख शेर लिखे होंगे। मगर अिस वक़्त सिर्फ़ छः हज़ारके क़रीब ही मिलते हैं, क्योंकि खुद अुनको अपने कलामको महफ़ूज़ रखनेकी परवाह न थी।

अुनके कुल्लियातसे अगर मामूली शेर निकाल दिये जाँय तो नज़ीरका शुमार बड़े बड़े फ़िलसुफ़ों और नासिह शायरोंमें होगा। अुनकी मिसालें आला और दिलकश होती हैं। अिस फ़नमें तो वह शेख सादीका मुक़ाबला करते हैं। अिनका कलाम निहायत साफ और सलीस (सुगम) है। अुसपर तसव्वुफ़ का बहुत बड़ा गहरा असर पड़ा है। अुनकी जानकारी बड़ी वसीअ है, अुनका लफ़्ज़ोंका खजाना कभी खूटता नहीं और बयानकी सफ़ाअी तो बेहद दिलकश है। खयाल, ज़बान और मज़मून अिनपर यहाँका-अिस मुल्कका रंग अैसा जम गया है कि अुन्हें ख़ालिस हिन्दोस्तानीके शायरोंके अुस्ताद कहना बजा होगा। अुन्होंने ज़बानकी जो ख़िदमतकी है वह तारीफ़ करनेके काबिल है अैसे लफ़्ज़ोंको जिन्हें दूसरे शायर अदना और बाज़ारी समझते थे अिन्होंने अपने कलाममें जगह दे दी और दुनियाको दिखलाया कि अिनमें वह वह खूबियाँ छिपी हुअी हैं जिन्हें अूपरी तौरपर देखनेवाली निगाहें नहीं देख सकतीं। अिनका बड़ा कमाल यह है कि वह जनताके ख़यालों और भावोंको खुद अुसीकी बोल-चालकी ज़बानमें ज़ाहिर करते हैं। नक़लीपन या बनावट मुतलक नहीं है। अिनके कलामसे यह साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह हालके ज़मानेके पेशरौ (मार्ग दर्शक) बल्कि अीजाद करनेवाले थे। अिनकी हँसी मजाक़से किसीको चोट नहीं पहुँचती। नजीरमें सौदाका ज़ोर मीरकी बलन्द परदाज़ी, अिन्शाकी ज़राफ़त या अनीस व दबीरका जोशवख़रोश नहीं है मगर यह सारी सिफ़तें अक हदतक अुनमें ज़रूर पायी जाती हैं :

भले आदमी थे, अिसवास्ते हर चीज़में अच्छाअी ही देखते थे। किसी तरहका तास्सुब (पक्षपात) या घमंड अुनके मिज़ाजमें तनिक भी नहीं था अिसलिये हिन्दू मुसलमान सभी अुनको मानते और अुनसे मुहब्बत रखते थे। आजभी वह शाह नजीरके नामसे पहचाने जाते हैं और बड़ी अिज़्ज़तसे याद किये जाते हैं।

अिनकी अेक मशहूर कविताका कुछ हिस्सा हम यहां देते हैं जिससे अुनके भावों और भाषाका पता चलेगा ।

टुक हिर्स व हवाको छोड़ मियां मत देस विदेस फिर मारा ।
क़ज्जाक़ अजलका टूटे है दिन रात बजाकर नक्कारा ॥
क्या बधिया भैंसा बैल सुतुर क्या गोनें पल्ला सर मारा ।
क्या गेहूं चावल मोठ मटर क्या आग धुवां औ अंगारा ॥
सब ठाठ पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा ।
तू बधिया लादे बैल भरे जो पूरब पच्छिम जावेगा ।
क़्या सूद बढाकर लावेगा या टूटा घाटा पावेगा !
कज्जाक़ अजलका रस्तेमें जब भाला·मार गिरावेगा ।
धन दौलत नाती पोता क्या अिक कुन्बा काम न आवेगा ॥
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बंजारा ॥

अध्याय सातवाँ

दिल्लीसे लखनअू

नासिख़ और आतिशका ज़माना

तमहीदः— मुग़ल सल्तनतके आख़िरी मालिक बहुत कमज़ोर हो गये थे, दरबारमें आपसी झगड़े बेहद बढ़ गये थे और बादशाहकी बची खुची अिज्ज़त व रोबको मराठों और जाटोंके ज़बर्दस्त हमलोंने ख़ाकमें मिला दिया था। शाही ख़ज़ाना कभीका ख़ाली हो चुका था, जिसका नतीजा यह हुआ कि अच्छे अच्छे शायर दिल्ली छोड़कर मआशकी तलाशमें बाहर निकले। हालाँकि मीर, सौदा, अिन्शा, मसहफ़ी, जुरअत वग़ैरह शायरोंकी ज़िन्दगीके आख़िरी दिन लखनअूमें कटे थे फिर भी अुन्हें 'लखनवी' न कहकर 'देहलवी' ही कहा जाता है।

दिल्लीके शायरोंने जब देखा कि लखनअूके लोगोंमें क़द्र व शनासका दर्दीला दिल है तो वह और कहीं जानेके झंझटमें न पड़कर सीधे लखनअू पहुँचे। अिससे दिल्लीका नुक़सान तो ज़रूर हुआ मगर साथ ही लखनअूके लोगोंने अुन्हें हाथोंहाथ ले लिया और अुनके साथ निहायत अिख़लाक़(सभ्यता) और मुहब्बतसे पेश आये। सल्तनतकी तरफ़से शायरोंको अिनाम-अिक़राम और जागीरें मिलने लगीं जिसका नतीजा शायरीके हक़में बुरा हो गया। यानी अिस ज़मानेके शायर अपने मालिकोंकी अैश व अिशरतके गुलाम बन गये और शायरी महज़ रस्मी और तकल्लुफ़से भरी हुअी रह गयी। मसलन् मीर और सौदाकी आज़ाद तबियतने जो काम करके दिखलाया वह दरबार-दारीके असरके नीचे दबे हुअे अिन्शा और मसहफ़ीसे न हो सका, हालाँकि दोनोंका दर्जा अेक ही सा था।

लखनअू और देहलीकी शायरीकी तर्ज़में भी काफ़ी फ़र्क़ आ गया। यूँ देखा जाय तो लखनअूको रोशनी तो देहलीसे ही मिली थी लेकिन देहलीकी बनिस्बत ज्यादा नयी नयी राहें निकालकर लखनअूके शायरोंने अपनी अेक अलग ही तर्ज़ निकाली और अुसे तकमील तक पहुँचा दिया।

अिस नयी तर्ज़के पेशवा शेख अिमामबख़्श 'नासिख़' थे। लखनअूकी तर्ज़की यह खुसूसियत थी कि अुसने अपनी तमाम तवज्जुह शेरके ज़ाहिरी हुस्नपर तथा लफ्ज़ोंकी रिआयतपर सर्फ़ कर दी। दिल्लीमें भावोंकी तसवीर सादा और पुरअसर शब्दोंमें खींची जाती थी। लेकिन लखनअूकी शायरीमें बलन्द ख़याली और भावोंकी सही सही तसवीरें नहीं मिलतीं। लफ्ज़ोंकी कुर्बानगाहपर दर्द, असर, दिलके जज्बे, सादगी, अुम्दगी वग़ैरह साकी सिफ़तों को कुर्बान किया गया। लेकिन अिस कमीको ज़बानकी खुबसूरतीने पूरा कर दिया। लखनअूकी शायरी नज़र और कानको अच्छी लगती है पर वह दिल-कश नहीं मालूम होती। वह दिमाग़को अपनी तरफ़ खींचती है मगर अुससे दिलपर किसी तरहका असर नहीं पड़ता। दिल्लीमें छोटी छोटी बहरोंका अिस्तेमाल ज़्यादा होता था, मगर लखनअूमें लम्बी-चौड़ी बहरें पसन्द की जाने लगीं। लखनअूका ज़माना लफ्ज़ोंकी तहक़ीक़ और रिआयतका ज़माना समझना चाहिये। दिल्लीके बहुतसे लफ्ज़ यहाँ आकर खारिज हो गये। तज़-कीर व तानीस (लिंग) में भी फ़र्क़ आ गया—यानी जिस लफ़्ज़को दिल्ली में मुअन्नस [स्त्रीलिंग] समझा जाता था अुसे लखनअूमें मुज़क्कर [पुलिंग] मानने लगे। यह झगड़ा अब तक चला आ रहा है।

नासिख़:—

(स १८३८ अी. में मृत्यु) शेख अिमामबख़्श 'नासिख़' लखनअू-के रहनेवाले थे। खुदाबख़्श नामके अेक ताजीरने अिन्हें गोद लिया था जिसकी मौतके बाद अिनको बहुत बड़ी जायदाद मिल गयी। कहते हैं कि यह बचपनमें मीर तक़ी 'मीर' के पास अपनी कविता ले गये थे पर अुन्होंने अिसलाह नहीं दी। तबसे वह अपनी

कविता खुद ही देखा करते थे। यह किसीके शागिर्द नहीं बने मगर अिनको तो सैंकड़ों शागिर्द मिल गये। अिन्होंने किसीकी मुलाज़िमत नहीं की। न क़सीदा कहा न हजो। ज़्यादातर तारीख़ ही कहा करते थे और सो भी बुख़ार जैसी छोटी छोटी बातों पर। (तारीख़ अेक शायरीकी क़िस्म है। अुर्दूमें हरेक अक्षरकी कुछ क़ीमत होती है जैसे अलिफ़=१, बे=२, पे=२) वग़ैरह। अब अगर कोअी महत्त्वकी घटना होती है तो अुसे अिस तरह छंदोबद्ध करते हैं जिससे अुस छंदमें आनेवाले अक्षरोंसे पूरी तरह मतलब निकले और अुसके अक्षर गिननेसे अुस घटनाकी तिथि, महीना, सम्वत् वग़ैरह मालूम हों। जैसे—कुनम शुक्रे खुदा=स. १२३५ हिजरी।)

यह बार-बार लखनअू छोड़कर बाहर चले जाते थे मगर लखनअूसे अितनी मुहब्बत हो गयी थी कि फिर वापस आ जाते। अिन्होंने तीन दीवान यादगार छोड़े हैं जिनमें 'दफ़्तरे परेशाँ' बहुत मशहूर है। अिसमें आला दर्जेकी ग़ज़लें, क़ितआत, तारीखें व रुबाअियाँ काफ़ी तादादमें शामिल हैं। अिन्होंने अेक मसनवी 'नज़्मे सिराज' भी लिखी है।

शेख़ नासिख़ तीन ख़ास बातोंके लिये मशहूर हैं। अव्वल तो अुनके कलामकी ताक़त बहुत अूँचे दर्जेकी थी। दूसरे, अुनकी तर्ज़ बिलकुल अनोखी थी जिसकी अीजाद करनेवाले और जिसे चलानेवाले वह खुद ही थे। और तीसरे, अुनके शागिर्दोंकी तादाद बहुत बड़ी थी। आज भी अुनका कलाम सनद माना जाता है। लफ़्ज़ोंकी तलाश और छानबीनपर अिन्होंने ज़रूरतसे ज्यादा तवज्जुह की है। अिसका नतीजा यह हुआ कि अुनका कलाम दिल-चस्पी और असरसे ख़ाली हुआ हालाँकि वह ज़ाहिरी हुस्नसे अच्छी तरह आरास्ता है। अिनकी ग़ज़लें शानदार लफ्ज़ और तरह तरहकी तशबीहों (अुपमाओं) के गुलदस्ते हैं मगर वह काग़ज़ी मालूम होते हैं अुनमें भाव और असरकी बिलकुल कमी है। अिनकी तशबीहें व तमसीलें अजीब और बिलकुल नयी होती हैं। ज़ाहिरी हुस्नपर ज्यादा ध्यान देनेसे यह नतीजा हुआ कि लफ्ज़ोंकी मुनासिबतकी बहुतायतमें शेरके मज़मूनका ख़ात्मा हो गया अिनके कलामको हक़ीक़ी तसव्वुफ़ कहीं छू तक नहीं गया है। अिनकी हँसी भी बनावटी मालूम होती है। अिनकी बातें दिमाग़पर तो काफ़ी असर डालती

हैं मगर अुनमें किसी अुम्दा खयालका पता न होनेसे दिल नहीं फड़कता। बनावटीपन, तकल्लुफ़, फ़ारसी तशबीहों और बड़े बड़े अरबी लफ्ज़ोंकी अुनके कलाममें भरमार है। अिन्होंने बहुतसे अच्छे अच्छे पुराने, देहाती और ठेठ हिन्दीके शब्दों और मुहावरोंका बायकाट कर दिया जिससे अुनकी ज़बानमें वह मीठास, वह चुलबुलापन नहीं पाया जाता जो अुनसे पहलेके शायरोंमें दिखाअी देता है। पुरानी तर्जको अिन्होंने मिटा दिया। 'रेख्ते' के बदले अिन्होंने 'अुर्दू' शब्द चलाया, जो हमेशाके लिये चल पड़ा। लेकिन दिल्लीमें यह लफ्ज़ देरीसे जारी हुआ।

यह कभी कभी अिकहरी रदीफ़ें (तुक) बांधते थे जैसे, का, को, है, नहीं वगैरह। क्रियाओंमें भी परिवर्तन कर दिया। आये है जाये है के बदले आता है जाता है वगैरह लिखते थे। आअियां, दिखाअियां वगैरह प्रयोग छोड़ दिये। नामहज्जब (असभ्य) और भद्दे लफ्जोंको खारिज कर दिया। तजकीर ब तानीसके सख्त कवायद बना डाले जिससे दिल्ली और लखनअूकी अुर्दूमें फर्क आ गया। अिन्होंने ग़ज़लके दायरेको बढा दिया जिससे अिश्क़ व अश्कको छोड़ कर और भी बहुतसे मजमून अुसमें आने लगे। लफ्जोंका सही अिस्तेमाल भी मुक़र्रर कर दिया।

नासिख़की यह अेक खुसूसियत समझनी चाहिये कि अुन्होंने जो क़वायद मुक़र्रर की अुसपर वह खुद भी सख्तीसे चले और अपने शागिर्दोंको भी अुनपर अमल करनेपर मजबूर किया। अिनके शागिर्द तो बहुतसे हैं। लेकिन अुनमें भी 'वज़ीर' 'बर्क़' 'रश्क़' 'मुनीर' वग़ैरह बहुतसे मशहूर हैं। नासिख़ अपने कलामकी बनिस्बत अपनी अुस्तादीके वास्ते ज्यादा मशहूर हैं। कलामका नमूना देखियेः—

पोंछता अश्क अगर गोशअे दामाँ होता।
चाक करता मैं जुनूँमें जो गरेबाँ होता॥
अपने होठोंसे जो अिकबार लगा लेता वह।
है यक़ीं सागिरे मै चश्मअे हैवाँ होता॥
हूँ वह वहशी कि अगर दश्तमें फिरता शबको।
आगे मशआलची वही गोले बयाबाँ होता॥

की मकाफ़ात शबे वस्ल खुदाने वरना।
किसलिए मुझे यह अज़ाबे शबे हिजराँ होता ॥
अै बुतो ! होती अगर मेहरो मुहब्बत तुममें ।
कोअी काफ़िर भी न वल्लाह मुसलमाँ होता ॥
हसरते दिल नहीं देता है निकलने नासिख़ ।
हाथ शल्ल होते मयस्सर जो गरेबाँ होता ॥

आतिश

मृत्यु स. १८४७ अी. ख्वाजा हैदर अली 'आतिश' के वालिद दिल्लीके रहनेवाले थे मगर सल्तनतकी तबाहीके वक़्त वह दिल्ली छोड़कर फ़ैज़ाबाद चले गये। वहीं आतिशकी वलादत हुयी। मसहफ़ी और अिंशाके मुक़ाबलोंको देख और सुनकर अिनको भी शेर व सखुनका शौक़ पैदा हुआ और यह मसहफ़ीके शागिर्द बन गये। अिनकी ज़िन्दगीकी तरह अिनका कलाम भी सादा और तकल्लुफ़ व तसन्नासे खाली है। अिनके मिज़ाजमें वजादारी [तरहदारी] और खुददारी कूट कूट कर भरी हुअी थीं। अिन्होंने न किसीकी खुशामद की और न दरबार भी गये।

अिनके कलामकी यह खुसूसियित है कि वह नॅचरल है। अुसमें मामूली व अदना ख़याल या बेजा और फ़िज़ूल तमसीलें नहीं मिलतीं। अिनके तराशे हुअे लफ़्ज़ आबदार मोतियोंकी तरह खिल अुठते हैं। अिनके शेरोंमें अलबत्ता मीरका दर्द व तड़प और ग़ालिबका अिख़्तराअ (मौलिकता) नहीं है मगर फिर भी मीर और ग़ालिबके बाद ग़ज़लगोअीमें आतिशका ही नम्बर आता है। यह अपने भावोंको निहायत मुअस्सिर और दिलकश लफ़्ज़ोंमें अदा करते हैं। अिनकी ज़बान मज़ेदार और रोज़मर्राकी बोल-चाल है, अिसलिए कलाम आसानीसे समझमें आता है और बड़ा लुत्फ़ देता है। ग़ज़लके सिवाय किसी दूसरी सनफ़में अिन्होंने तबअ-आज़माअी (बुद्धिबलकी परीक्षा) नहीं की। हक़ीक़तमें बंदिशकी चुस्ती, लफ़्ज़ोंकी मिठास और मज़मूनकी बलंदी में नासिख़से आतिश बहुत आगे बढ़ गये हैं। और अेक ह[illegible]की शायरकी हैसियतसे अिनको बहुत अूँचा दर्जा हासिल हुआ है। यह बहुत कम पढ़े-लिखे थे पर अिनकी प्रतिभाने अिनकी शिक्षाकी कमीको पूरा कर दिया था।

नासिखके साथ अिनकी चश्मकें चला करती थीं। मगर अुनके बारेमें अिनके दिलमें कभी बुराअी नहीं आयी। अिसी वजहसे नासिखके मरनेके बाद अिन्होंने शेर कहना छोड़ दिया।

अिनके शागिर्द काफ़ी तादादमें थे। जिनमेंसे 'रिंद', 'सबा', 'ख़लील' 'नसीम' वग़ैरह बहुत मशहूर हैं। अिनके कलामका नमूना देखिअे:—

सुन तो सही जहाँमें है तेरा फ़िसाना क्या।
कहती है तुझको ख़ल्के ख़ुदा ग़ायबाना क्या॥
ज़ेरे ज़मींसे आता है गुल सो ज़र बकफ़।
क़ारूँने रास्तेमें लुटाया ख़ज़ाना क्या?॥
चारों तरफ़से सूरतमें जानाँ हो जल्वागर।
दिल साफ़ हो तेरा तो है आअीना-ख़ाना क्या?॥
आती है किस तरहसे मेरी क़ब्ज़े रूहको।
देखूँ तो मौत ढूँढ़ रही है बहाना क्या?॥
होता है ज़र्द सुनके जो नामर्द मुद्दअी।
रुस्तमकी दास्ताँ है हमारा फ़िसाना क्या?॥
याँ मुद्दअी हसदसे न दे दाद तो न दे।
आतिश ग़ज़ल यह तूने कही आशिक़ाना क्या॥

अख़्तर

स. १८२८-१८८७ अी. सुल्तान वाजिद अली शाह 'अख़्तर' सल्तनत अवधके आख़िरी ताजदार थे। अिनके वालिद नवाब आसफ़ुद्दौला 'आसफ़' भी मशहूर शायर और शायरोंके क़द्रदाँ थे जिनके दरबारमें सौदा, मीर, सोज़ वग़ैरह बड़े बड़े शायर रहते थे। आसफ़के बारेमें यह कहावत मशहूर है कि 'जिसे न दे मौला उसे दे आसुफ़ुद्दौला।' अुनका कलाम सादगी और दर्दसे भरा हुआ है। अुनके चल बसनेपर यानी स. १८८४ अी. में नवाब वाजिद अली शाह तख़्तनशीं हो गये। अिन्हें अिमारतें बनानेका बेहद शौक़ था और अिसी शौक़की वजहसे अिन्होंने लखनअूके कैसर बाग़ पर दो करोड़ रुपया खर्च कर दिया था। शुरू शुरूमें यह

बड़ी दिलचस्पी और जिम्मेदारीके साथ मुल्कका अिन्तज़ाम देखा करते थे मगर नालायक़ मुसाहिबों और बदख़्वाह हमनशीनोंके चंगुलमें फँसकर धीरे धीरे अिनका दिमाग़ ख़राब होता गया और सल्तनतके अिन्तज़ाम परसे ध्यान अुचट गया। अिनकी अैश व अिशरतकी बदौलत मुल्कमें बदअिन्तज़ामी फैल गयी जिससे स. १८५६ अी. में अिनको अितनी बड़ी सल्तनतसे हाथ धोना पड़ा। अिसके बाद ग़दरके ज़मानेमें अिन्हें कलकत्तेके फ़ोर्टमें क़ैद करके रखा गया। ग़दरके ख़त्म हो जानेपर भी अिनको वहीं मटियाबुर्जमें क़याम करना पड़ा। यहाँ भी अिन्होंने बड़ी बड़ी आलीशान कोठियाँ और दिलकश बाग़ बनवाये। जिससे वह लखनअूका अेक मुख़्तसर नमूना बन गया।

अिसी ज़मानेमें दिल्लीके बादशाह दूसरे बहादुरशाहको भी क़ैद करके रंगून भेजा गया जिससे लखनअू और दिल्ली—जो अेक अरसेतक अुर्दू शायरीके मस्कन व मामन (घर) रह चुके थे—अदबी लिहाज़से बिलकुल वीरान हो गये। और यहाँके शायर अब हिन्दुस्तानी रियासतोंकी तरफ़ निहायत आजिज़ी और हसरतकी निगाहोंसे देखने लगे। लखनअूके बाज़ शायर तो अपने आक़ा 'अख़्तर' के साथ और बाज़ ग़दरके बाद कलकत्ता चले गये। अिन शायरोंको वाजिदअलीने बड़े बड़े ख़िताब दे दिये और पैसेसे भी मदद की। वहाँ आये दिन मशायरे होते थे जिससे मटियाबुर्ज लखनअूका शाही मुहल्ला मालूम होता था। 'बर्क़' 'दरख़्शाँ' 'बहार' 'हुनर' वग़ैरह शायरोंने यहाँ नाम व पैसा कमाया और अुर्दू ज़बान व शायरीका चर्चा तमाम बंगाल-भरमें फैल गया।

अख़्तरकी तसनीफ़ें बहुत बड़ी तादादमें मौजूद हैं। तक़रीबन् चालीस जिल्दें होंगी जिनमें बहुतसे ग़ज़लोंके दीवान, मसनवियाँ, मर्सिये, क़सीदे वग़ैरह हैं। अिनकी ठुमरियां आज भी बहुत पसंद की जाती हैं। यह 'असीर' और 'बर्क़' से अिसलाह लेते थे। अुर्दूके अलावा ठेठ हिन्दीमें भी अिनका कलाम मौजूद है। अपनी प्यारी बेगम 'ज़ीनत महल' के नाम जो ख़त अिन्होंने कलकत्तेसे लिखे हैं वह बहुत ही दिलचस्प हैं। अिनकी ज़बान निहायत साफ़ और मीठी मालूम होती है मगर अुसमें दर्द और कोमलताकी कुछ कमी रहती है। कलामका नमूना देखिये:—

सल्तनत छोड़ दी दरवेशोंकी सोहबतके लिये।
जोफ़अे अिश्क़में है कोअी न हमसर अपना ॥
क़ैद होनेसे कहीं बूअे रियासत जायगी ?
लाख गर्दिश आसमाँ को हो, जमीं होता नहीं ॥
जअीफ़ीमें भी लपटी है बलाअे शायरी हमसे।
न छूटेगी कभी 'अख़्तर' क़लमसे मश्क़े तिफ़्लाना॥

मैं लखनअू में जैसी अजा करता था।
और गिरियअे अन्दोहो बुका करता था॥
वैसा ही मेरा हाल हैं कलकत्ते में।
पर याद नहीं कि अेश क्या करता था॥

क्या हुआ गर अिश्क़में तेरे लुटा मुल्के अवध।
यक गदा अपनासा अिब्राहीम अदहम हो गया॥

लगा ठोकर न पाये नाज़ से तू
कभी ताजे सरे हिन्दोस्ताँ थे॥
गुरूर व मैपरस्ती, खुअेबद व रंज।
ये अिन्साँके लिये हैं चार दोज़ख़॥

—:+:—

अिस ज़मानेमें और भी बहुतसे शायर गुज़रे हैं जिनमें ज़्यादा मशहूर यह हैं:—

१. 'नसीम'

स. १८११– पंडित दयाशंकर क़ौल 'नसीम' काश्मीरी ब्राह्मण थे।
१८४४ **अी.** अिनकी मसनवी 'गुलज़ार नसीम' अुर्दू साहित्यमें ऊँचे दर्जेकी मसनवी समझी जाती है। अिनकी कविता आम व ख़ाससे बहुत पसन्द की जाती थी।

२. 'अमानत'

स. १८१६ सैयद आगा हसन 'अमानत' मियाँ दिलगीरके शागिर्द थे।
१८५८**अी.** अिनकी तसनीफ़ 'अिन्दर सभा' अुर्दू नाटकोंमें सबसे

पहली गिनी जाती है। अिस किताबकी भाषा बिलकुल बनावटी और तुक-बन्द है।

३. ज़की

मृ. स. १८६४ अी. शेख मेहदी अली 'ज़की' अेक आला दर्जेके शायर थे। अिनको मलिकुश्शुअराका खिताब मिला था।

अिनके अलावा 'बहर' 'इश्क़' 'मुनीर' 'मेहर' 'आबाद' वगैरह और भी बहुतसे शायरोंने अिस ज़मानेको रोशन किया।

अध्याय आठवाँ

मर्सिया और मर्सियागो

मर्सिया किसे कहते हैं ? मर्सिया नज्मकी वह क़िस्म है जिसमें किसी मुर्दा शख्सकी तारीफ़ की जाय। वह क़सीदेके बिलकुल अुलटा है क्योंकि क़सीदेमें किसी ज़िन्दा शख्सकी तारीफ़ होती है। अिस्तिलाह (परिभाषा) में मर्सिया अुन्हीं नज्मोंको कहते हैं जिनमें हज़रत अिमाम हसन, हजरत अिमाम हुसेन और करबलाके दूसरे शहीदोंकी शहादतका ज़िक्र किया जाय। अिस्लामको माननेवाले लोग अिसके बहुत शौक़ीन रहे हैं। प्रारंभमें अिस प्रकारकी नज्मोंमें अूपर लिखे हुअे लोगोंके हुस्नके गुणोंका बयान किया जाता। और अुनकी मौतपर अफ़सोस जाहिर किया जाता। अुनकी असली गरज़ रोना पीटना होती थी। लेकिन अेक लम्बे अरसेके बाद मर्सियाका दायरा वसीअ होता गया और अुसमें मुख्तलिफ़ क़िस्मके नये नये मज़मून दाखिल होने लगे। मसलन् चेहरा, जंगके दृश्य, कुदरतके नज़ारे, घोड़े और तलवारकी तारीफ़, सामान व असबाब वग़ैरह चीज़ें कसरतसे अिस्तेमाल होने लगीं। अिस क़िस्मके मज़मूनोंका अिज़ाफ़ा (वृद्धि) होनेसे मर्सियाका मर्तबा बढ़ गया और आखिरकार अुसने अुर्दू शायरीमें अपनी अेक खास जगह बना दी। कहते हैं कि अरबकी शायरीकी अिब्तदा मर्सियासे ही हुअी थी। मर्सियागो यानी मर्सिया कहनेवाला और मर्सियागोअी यानी मर्सिया कहना।

लेकिन मर्सियागोअीसे कोअी ज़ाती फ़ायदा न था, क्योंकि अुसमें जिसकी तारीफ़ होती थी अुससे कुछ मिलनेकी संभावना नहीं होती थी। अिसलिये क़सीदागोअीकी अीजाद हुअी। दुनियामें अपनी खुशामद दिलचस्पीसे सुनने और सुनानेवालोंकी तादाद तथा अुसके लिये काफ़ी रुपया पैसा खर्च करनेवालोंकी तादाद किसी भी जमानेमें कम नहीं रही है। अिसीलिये

क़सीदागोअी पैसा कमानेका कामयाब ज़रिया हो गअी। अैसा मालूम होता है कि फ़ारसीकी अिब्तदा क़सीदागोअीसे हुअी है जिससे अुसमें काफ़ी दिखावटी-पन आ गया।

हम यह नहीं कह सकते कि अुर्दूकी अिब्तदा क़सीदागोअीसे हुअी या मर्सियागोअीसे। लेकिन अितना तो साफ़ जाहिर है कि अुसकी अिब्तदामें क़सीदा और मर्सिया दोनों मौजूद थे। दक्षिणके बिजापुर और गोलकुंडेके बादशाह मज़हबपरस्त होनेसे मर्सिया वग़ैरह खूब कहते थे। मगर उस वक़्त मर्सिया बिलकुल अिब्तदाअी हालतमें था। अिसके बाद वली, मीर, अमानी, दरख़्शॉ, क़ादिर, नदीम, मीर और सौदाने भी मर्सिये लिखे मगर अुनमें मज़-हबियत काही रंग गाढ़ा था।

सौदाके वक़्त तक मर्सिया 'चौमिसरा' (चतुष्पदी) हुआ करता था। सौदा ने सबसे पहले अुसे मुसद्दस (षट्पदी) में लिखा जो अब तक जारी है। ज़मीरने मर्सियेके मज़मूनमें अिज़ाफ़ा किया और अनीस व दबीरके ज़मानेमें वह अपने कमाल तक पहुँच गया।

ख़लीक़:—

मीर मुस्तहसन 'ख़लीक़, मशहूर मसनवी 'सिहरुलबयान' के लेखक मीर हसनके साहबज़ादे थे। अिन्होंने वहुत छोटी अुम्रमें सखुनकी मश्क़ की और मसहफ़ी के शागिर्द बन गये। यह पहले फ़ैज़ाबादमें और बादको लखनअूमें रहते थे। बहुत आला दर्जेके शायर थे। यह अपनी गज़लें अक्सर बेच डालते थे मगर फिर भी अिनका अेक दीवान मौजूद है। यह 'ज़मीर' 'फ़सीह' और 'दिलगीर' के हमअसर (सम-कालीन) थे। ज़मीर और ख़लीक़की होड़ने मर्सियाकी कलाकी तक़मील व तरक़्क़ीमें मदद पहुँचायी। अिन्होंने चौमिसराको छोड़कर सौदाके मुसद्दसको फ़ैलाया। मर्सिया पढ़ते वक़्त दर्द और असरके बजाय अब लफ्ज़ोंपर ज्यादा ध्यान दिया जाने लगा। पहले मर्सिया चालीस पचास बन्दों (पदों) तक ही महदूद था। मीर ज़मीरने पहले पहले अुसे बढ़ा दिया, अिस तरह कि पहले तमहीद फिर सरापा (नखशिख), फिर जंगके मैदानका नक्शा और आखिरमें शहदतका जिक्र अिस क़िस्मके

मर्सियोंकी बड़ी कद्र हुआी और अिससे मर्सियागोओंके आलममें एक बड़ा अिन्क़लाब पैदा हो गया। पहले तो सिर्फ़ रोना-रुलाना था। अब और चीज़ोंके शामिल हो जानेसे अुसकी जाँच-पड़ताल भी होने लगी। अिससे आयन्दाके लिए तरक़्क़ीकी राहें खुल गयीं। अब इस फ़नमें हिन्दू लोग भी बड़ी दिलचस्पी लेने लगे।

ख़लीक़ने ज़बानकी सफ़ाअी और मुहावरोंकी सेहत (शुद्धि) पर बहुत तवज्जुह की जिसकी पैरवी अनीसने दिल लगाकर की। ख़लीक़ जब मर्सिया पढ़ते थे तब सिर्फ़ आँख व गर्दनसे काम लेते थे मगर अपने भावोंके मुताबिक सुननेवालोंको रुलाते या हँसाते थे। अिनके ख़ानदानकी ज़बान स्टैंडर्ड अुर्दू मानी जाती है। दूसरा कोअी भी ख़ानदान अितने क़ाबिल और मशहूर शायरों का सिलसिला नहीं पेशकर सका है। अिसीलिए शेख अिमामबख़्श 'नासिख़' अपने शार्गिदोंसे कहा करते थ कि 'अगर ज़बान सीखना हो तो ख़लीक़ के घरानेसे सीखो।' अिस खानदानके मशहूर शायर हैं मीर अमामी, ज़ाहक़, हसन, ख़ल्क़, खलीक़, मुहसन, अनीस, मूनिस, अुन्स, नफ़ीस, दुख्तर, आरिफ़, वग़ैरह।

मीर अनीस

स० १८०२ – १८७४ अी० मीर बबरअली 'अनीस' ख़लीकके बेटे और शागिर्द भी थे। अिनमें विद्वत्ता अधिक नहीं थी पर कवित्वशक्ति अीश्वरदत्त थी। जीवमात्रमें सौंदर्य देखते थे। मिज़ाजमें अिनहा दर्जेकी ख़ुद दारी थी अिसलिए पैसे या नामकी लालचसे किसीकी तारीफ़में अिन्होंने अेक हर्फ़ भी ज़बानसे नहीं निकाला। अिन्होंने ढाअी लाख शेर यादगार छोड़े हैं जिनमें हज़ारों मर्सिये, सलाम, क़ितअे, ग़ज़लें वग़ैरह शामिल हैं। अिनका पढ़नेका ढंग निहायत दिलकश था जिसके लिये अुन्होंने आअीनेके सामने बैठकर मश्क़ की थी। अुर्दूकी अदबी दुनियांमें अिन्हें वही दर्जा हासिल है जो अंग्रेजी साहित्यके जगतमें शेक्सपियरको और संस्कृत लिटेचरमें वाल्मीकिको हासिल है। अिन्होंने अुर्दू ज़बानकी बहुत भारी सेवा की है। अिनका कलाम निहायत फ़सीह और ताज़ा है। मुहाविरोंकी सेहतका वह बहुत ख़याल रखते थे।

अुनकी वजहसे जबानमें बहुतसे नये मुहाविरे दाखिल हो गये। अिन्हें कुदरतके मन्जरोंकी हूबहू तस्वीरें खीचनेमें कमाल हासिल था। अिसी तरह अपने भावों-को जाहिर करनेमें भी अिनको बड़ी कुदरत हासिल थी। फ़िजूल मुबालगे (अतिशयोक्तियाँ) और बेजा तमसीलें अिनमें नहीं मिलतीं। सफ़ाअी, लफ्जों को ठीक जगह पर बैठाना और जोर यह सब गुण अुनके कलाममें मिले हुये हैं। अिनके शेर बहुत साफ़, सलीस और जल्द समझमें आनेवाले हैं। अनीस का मर्त्तबा अुर्दू शायरीके अितिहासमें पहले सफेपर बहुत ऊँचा है। अिन्हें अुर्दू के फ़िर्दोसी (अेक मशहूर फ़ारसी कवि) कहते हैं। जिस नेचरल शायरीका आगाज हाली और आजादके जमानेमें हुआ अुसकी दागबेल मीर अनीसने डाली थी।

कलामका नमूना देखिये :—

गुनाहका बोझ जो गरदन प' हम अुठाके चले।
खुदाके आगे खिजालतसे सर झुकाके चले॥
किसीका दिल न किया हमने पायमाल कभी।
चले जो राह तो चिऊँटीको भी बचाके चले॥
मिला जिन्हें अुन्हें अुफ़्तादगीसे औज मिला।
अुन्होंने खाअी है ठोकर जो सर अुठाके चले॥
मुक़ाम यों हुआ अिस कारगाहे दुनियामें।
कि जैसे दिनको मुसाफ़िर सरामें आ के चले॥
अनीस दमका भरोसा नहीं ठहर जाओ।

—×—

चिराग लेके कहाँ सामने हवाके चले॥
किस तरह खिले दिल कि जिगरबंद नहीं है।
घर कब्रसे बदतर है जो फ़र्जन्द नहीं है॥
आरामे जिगर ताब व तवाँ साथ है अिसके।
फिरता है जिधर रिश्ताअे जाँ साथ है अिसके॥

———

दबीर

स. १८०३— मिर्ज़ा सलामतअली 'दबीर' दिल्लीके रहनेवाले
१८६८ **औ.** थे मगर रोटीकी खोजमें लखनअू पहुचे और
वहीं मशहूर होगये। अिनके मशहूर हो चुकनेके बाद मीर अनीस फ़ैज़ाबादसे लखनअू चले गये और तबसे अिन दोनोंमें मुक़ाबला शुरू हो गया। लेकिन अिस मुक़ाबलेमें कभी कोअी भद्दी चीज़ नहीं आयी जैसे अिंशा और मसहफ़ीके ज़मानेमें आमतौरपर देखा गया था। बल्कि यह दोनों अेक दूसरके विरोधी होते हुअे भी आपसमें बड़े अदब व आदाबसे पेश आते थे। मर्सियागोअीके यह पूरे अुस्ताद थे। दोनोंने अपनी सारी अुम्र अिसीमें बिता दी। अपनी नयी नयी तशबीहें, मज़मूनोंकी ताज़गी और लफ़्ज़ोंके भारीपनके वास्ते दबीर बहुत मशहूर हैं। अिनके आलिम फ़ाज़िल होनेकी झलक कलाममें बराबर दिखाअी देती है। अुर्दूके साथ अरबी लफ़्ज़ोंका जोड़ अिस होशियारीसे बिठाते थे कि देखते दी बन पड़ता है। अुनके खयाल अितने अितने किस्मके होते हैं कि ज़रा भी ग़ौर करनेसे बड़ा ताज्जुब होता है। यह मिर्ज़ा ज़मीरके शागिर्द थे।

मीर अनीस और मिर्ज़ा दबीरमें बहुत बड़ा फ़र्क़ है। अव्वल तो यह है कि मीर मौरोसी (रिक्थकमी) शायर थे और मिर्ज़ाको यह बड़प्पन हासिल न था। फिर अनीसका ध्यान ज़्यादातर ज़बानकी सफ़ाई, बंदिशकी चुस्ती और मुहावरोंकी दुरुस्ती वग़ैरह चीज़ोंकी तरफ़ रहता था, और दबीरको ख़यालोंकी अधिकता, नयी नयी तमसीलों और भारी भारी शब्दोंका ख़याल ज़्यादा रहता था। मीर साहब आसानी और सादगीको ज़्यादा क़ीमत देते थे; मगर मिर्ज़ा साहब कारीगरी और रंगीनीके आगे बाक़ी चीज़ोंको हेच (तुच्छ) समझते थे। अिन दोनोंके शिष्य बहुत बड़ी तादादमें थे जो अपनेको अनीसिये और दबीरिये कहलवाते और झगड़ते रहते थे। दबीरके कलामका नमूना देखिये :

चमनकी बे सबातीपर जो अुसका ध्यान जाता है।
तो क्या रोती है शबनम मुँह पै' रखके गुलके दामनको।

मैं कुश्ता हूँ किसी गुलके मिसी आलूदः दन्दाँ का ।
चढ़ाना बाग़बाँ तुरबत पे' मेरी बर्गे सौसन को "
'दबीर' आयेगा कब वह भूलकर गोरे ग़रीबाँ पर।
जो अक्सर रौंदता थाँ नाज़से फूलोंके ख़िरमन को "

दुनियाका अजीब कारख़ाना देखा ।
किस किस का न याँ ज़माना देखा ॥
बरसों रहा जिनके सरपे' छतरे ज़रीं ।
तुरबत पे' न अुनकी शामियाना देखा ॥

अिस ज़मानेमें मियाँ दिलगीर, फ़सीह मस्कीन, अफ़सुर्दा, सिकन्दर, गदा, वग़ैरह सैकड़ों मर्सियागो गुज़रे हैं ।

लखनअू हमेशा शीआपंथियोंका मरकिज़ (केन्द्र) रहा है य हाके ज्यादातर बाशिन्दे और नवाब शीआ थे । अिसलिये यहाँ मर्सियागोअीने जो तरक़्क़ी हासिलकी वह कोअी अचरज की बात नहीं है । क्योंकि मर्सियामें जिन शहीदोंका ज़िक्र हुआ करता था वह सब शीआ लोगोंके पूजनीय व्यक्ति थे । अिससे ज़बानको काफ़ी फ़ायदा पहुँचा । आजकलकी तर्ज़में जो खासियतें पाई जाती हैं वह सब मर्सियामें मौजूद थीं । सारांश, अुर्दूके महदूद मैदानको मर्सियाने बहुत लम्बाचौड़ा बना दिया, और अुर्दूके औज़ार रखानेमें अेक निहायत क़ीमती और ज़रूरी औज़ारका अिज़ाफ़ा हुआ वीररसकी कविताकी जो कमी अुर्दूमें एक ज़मानेसे महसूस हो रही थी अुसको पूरा करनेका काम मर्सियाने किया । अब सम्बन्द्ध लम्बी लम्बी कविता भी लिखी जाने लगी और संसारकी ऊँची ऊँची ज़बानोंके साथ बैठनेका हक़ अुर्दूको हासिल हुआ ।

★

अध्याय नौवाँ

फ़िरसे दिल्ली

भूमिका पिछले अध्यायमें हम देख चुके हैं कि सल्तनतकी तबाहीकी वजहसे दिल्लीकी शायरीका चिराग किस तरह बुझने लगा और लखनअूकी मुहब्बतके तेलसे थोड़ी देरके लिये वह किस तरह रोशन हुआ। हम लखनअूकी महफ़िलोंमें अिस क़द्र मस्त हो गये थे कि बेचारी दिल्लीकी तरफ़ तवज्जुह करनेकी हमें न फ़ुरसत हुई न ज़रूरत ही। हम समझ रहे थे कि दिल्लीकी शायरी अब मर चुकी है।

लेकिन नहीं! वह चिराग बुझा नहीं था और न वह कभी बुझ भी सकता था। हाँ, अुसमें तेलकी कुछ कमी ज़रूर हुअी थी जिससे अुसकी रोशनी धीमी पड़ती जा रही थी। अितनेमें वहाँ अैसे अैसे बाकमाल (कमाल दिखानेवाला) पैदा हो गये जिन्होंने अपनी सारी ज़िन्दगी अुस चिरागको सबसे ज्यादा रोशन करनेमें लगा दी। और खुदाका शुक्र कि वह कामयाब भी हो गये। फिर नये सिरेसे अुरूज (अुत्थान) हो गया। पुराने ज़मानेके बाकमालोंने जो बीज बोया था वह बेकार नहीं गया। अुनकी कोशिशें हरी भरी हुअीं और वह दरख्त जिसको अगले वक्तोंके शायरोंने बड़ी मेह-नतसे सींचा था अब ज़ोरसे फफकना शुरू हुआ। पतझड़ गुज़र गया और नवबसन्त अपने साज व सिंगारके साथ आ मौजूद हुआ।

ज्वार और भाटा, तरक़्क़ी और तनज़्ज़ुल, अुत्थान और पतनका चक्र दुनियामें चलता ही रहता है। यह हो नहीं सकता कि कोअी चीज सिर्फ़ तरक्क़ी ही तरक्क़ी करती जाय या सिर्फ़ तन्ज़्ज़ुलकी गारमें नीचे ही नीचे धँसती जाय! थोड़े अर्सेकी ख़ामोशीके बाद दिल्लीकी शायरीकी बुलबुलने फिरसे चह-चहाना शुरू किया। अिस ज़मानेके शायर ग़ालिब, ज़फ़र, ज़ौक़, मोमिन वग़ैरहके कलाम हक़ीक़ी-शायरी और सही भावोंसे लबालब भरे हुअे हैं।

लेकिन इस जमानेमें जबानपर विदेशी भाषाओंका जो पुट गहरा हो गया अुसकी वजहसे अुसका अेक लिहाजसे नुकसान हो गया। वह यह कि पुराने शायरोंकी बरती हुअी सीधी सादी हिन्दी तरकीबोंको जबानसे बाहर कर दिया गया और अुनकी जगह बड़े बड़े अरबी और फ़ारसी लफ़्ज़ रख दिये गये। नतीजा अिसका यह हुआ कि वह आम लोगोंके कामकी न रही।

ग़ालिब

स. १७९६-१८६९ अी. मिर्जा असदुल्ला खाँ 'ग़ालिब' ने अपनी शुरू शुरूकी तालीम आगरेमें पाअी जहाँ 'नज़ीर' अकबराबादीसे अिन्होंने कुछ किताबें पढ़ी। यह पहले 'असद' अुप-नाम करते थे जिसे अुन्होंने बादमें छोड़ दिया। 'हरमिज' नामके अेक पारसी शख्सकी मददसे ग़ालिबने फारसी पढ़ी और अुसीमें तबियत-आज़माअी करने लगे। फ़ारसी अदबमें अिनका दर्जा निहायत आला और मुमताज़ (प्रतिष्ठित) है। कहीं-कहीं तो खुसरो और फ़ैजीसे भी आगे बढ़ गये हैं। अुर्दूकी बनिस्बत अिन्हें फ़ारसीसे ज्यादा मुहब्बत थी और अपने फारसी कलामको ही वह गर्व करनेकी चीज़ समझते थे। 'पंच आहंग' 'कुल्लियाते नज़्मे ग़ालिब' 'मेहर-नीमरोज़' वग़ैरह फ़ारसी तसनीफ़ोंने अिनको बहुत बलन्द दर्जा बख्शा है।

लेकिन जायकेकी तब्दीलीके लिये और अपने दोस्तोंके अिसरारसे वह कभी कभी अुर्दू शेर कह लिया करते थे। अिससे यह हरगिज़ नहीं समझना चाहिये कि अुनका दर्जा अुर्दू शायरीमें कुछ कम होगा। ना! अैसी बात नहीं है। वह भले ही अपने अुर्दू कलामको हेच समझते हों पर अुर्दूदाँ लोगोंके वास्ते अुनका कलाम मीर और सौदासे किसी तरह कम नहीं है। हाँ अुनकी फ़ारसीकी मुहब्बतने अुनके कलामको कुछ मुश्किल जरूर बना दिया है मगर अुनके दूसरे वस्फ़ोंको मद्देनज़र रखनेसे मालूम होता है कि जो भी हो, ग़ालिब बेशक अेक बहुत बड़े शायर थे।

ग़ालिबकी घरेलू ज़िन्दगी बहुत ही दर्दसे भरी हुई थी। बाहरी ज़िन्दगी में भी वह काफ़ी मुसीबतों और दुखोंका मजा चखे हुए थे जिससे अुनका कलाम दर्द व असरसे लबालब भरा हुआ है। लेकिन अुनका मिज़ाज बड़ा

शगुफ्ता और दिल बड़ा हँसोड़ था जिससे बड़ीसे बड़ी आफ़तोंको वह हँस खेलकर काट देते थे। और अिसलिये अुनकी शायरीमें जो अुदासी और दर्दकी तारीकी (अँधेरा) है अुसे अुनकी हँसोड़ तबियत और शोखी दूर करनेकी कोशिश करती है।

अिनका अेक छोटा-सा दीवान है जिसमें तक़रीबन अठारह सौ शेर हैं। लेकिन अुनकी शुहरत असलमें अुनके अुर्दू खतोंके कारण ज़्यादा हुई है। यह खत दो जिल्दोंमें शाया हुअे हैं। अेकका नाम है 'अुर्दूअे मुअल्ला' और दूसरेका 'अूदे हिन्दी'। अिनकी जबान बहुत साफ़-सुथरी और दिलकश जनताके हालमें शरीक होनेको यह बहुत बुरा मानते थे अिसलिये अिनकी शुरू शुरू की शायरीकी ज़बान आम लोगोंकी जबानसे बहुत ही अलाहिदा मालूम होती है। लेकिन आख़िरी अम्रमें अिनकी ज़बान कुछ ज्यादा सुलझी हुअी और आसान बन गयी

ग़ालिबमें मौलिकता तो हद दर्जेकी है। सिर्फ़ तुकबन्दी या काफ़िया-पैमाअी से वह काम नहीं चलाते। यह लफ़्ज़ोंके रास्तेपर नहीं चलते बल्कि लफ़्ज़ ही खयालोंके गुलाम बनकर अुनके पीछे पीछे चलते हैं। अुनके शेर अुनके विचारोंकी सही सही तस्वीरें आँखोंके सामने खड़ी कर देते हैं। अक्सर कलाम फिलसुफ़ियत और हक़ीक़ी बातोंसे भरा हुआ है। फ़िलसुफ़ाको निहायत आसानी और सादगीसे अदा करनेकी कला अिनमें बहुत ऊँचे दर्जे तक पायी जाती है।

यह फ़िरक़ाबन्दी और मज़हबी तास्सुबोंसे बिलकुल परे थे। यही वजह है कि अिनके शागिर्दोंमें मुंशी हरगोपाल 'तुफ्ता' जैसे हिन्दू शायर थे। अिनके दोस्तोंमें भी कअी ग़ैर मुसलिम लोग शामिल थे। अिनके मशहूर शागिर्द 'रख़्शाँ' 'मजरूह' 'तुफ्ता' 'हाली' वग़ैरह हैं।

दिल्लीके बादशाहसे अिन्हें 'नज्मुद्दौला दबीर अुलमुल्क निज़ामे जंग' खिताब मिला था। अपने ज़मानेके यह बहुत बड़े माहिर शायरीके आसमानके सबसे रोशन सितारे और कामिल अुस्ताद थे।

अिनके अुर्दू कलामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाअिये :--

कोअी अुम्मीद बर नहीं आती। कोअी सूरत नजर नहीं आती॥
मौतका अेक दिन मुअैयन है। नींद क्यों रात भर नहीं आती॥

आगे आती थी हाले दिल प' हँसी । अब किसी बात पर नहीं आती ॥
जानता हूँ सवाबे ताअित व जहद । पर तबीयत अिधर नहीं आती ॥
है कुछ अैसीही बात जो चुप हूँ । वरना क्या बात कर नहीं आती ॥
क्यों न चीखूँ कि याद करते हैं । मेरी आवाज गर नहीं आती ॥
दागे दिल गर नजर नहीं आता । बू भी अै चारागर नहीं आती ।
हम वहाँ हैं जहाँसे हमको भी । कुछ हमारी खबर नहीं आती ॥
मरते हैं आरजूमें मरनेकी । मौत आती है पर नहीं आती ॥
काबे किस मुँहसे जाओगे ग़ालिब
शर्म तुमको मगर नहीं आती ॥

ज़ौक़

(स. १७८६—१८५४ अी.) शेख़ अिब्राहीम 'ज़ौक़' दिल्लीके अेक ग़रीब सिपाहीके बेटे थे । बचपन ही में अिन्हें शायरीसे मुहब्बत हो गयी और यह 'शाह नसीर' के शागिर्द बन गये । लेकिन शागिर्दके ज़हनकी तेज़ी देखकर अुस्तादके दिलमें जलन होने लगी और दोनोंमें झगड़ा हो गया । अुसके बाद ज़ौक़ने किसीको अुस्ताद न बनाया । अित्तफ़ाक़से बहादुरशाह 'ज़फ़र' बादशाहकी गजलोंको सुधारनेका काम अिन्हें मिल गया और यह बहुत ही जल्द मशहूर हुअे । अिनके ज़हनकी तेज़ी, तबीयतकी चमक और हाफ़िज़ाकी कुवतको देखकर अकबरशाह (दूसरे) ने अिन्हें 'ख़ाक़ानी अे हिन्द' का ख़िताब अता किया । ज़ौक़ बड़े खुदातर्स (खुदासे डरकर रहनेवाले) और अिन्सानी हमदर्दीसे लबरेज़ थे ।

अिन्होंने ज़बानको खूब साफ़ किया । मुहावरों और मिसालोंके अिस्तेमालमें वह अपना जवाब नहीं रखते थे । नसीर, सौदा, दर्द, मसहफ़ी वग़ैरह सभी अूँचे दर्जेके शायरोंका रंग अिनमें पाया जाता है । यह ग़ज़ल और क़सीदेके पूरे अुस्ताद थे । मुख़म्मस, रुबाअियाँ और तारीखें भी अिन्होंने लिखी हैं । लेकिन सलाम, मर्सिये और हजोयें नहीं पायी जातीं । पिंगलके शास्त्रसे वह बहुत अच्छी तरह वाक़िफ़ थे । तकल्लुफ़ और बनावट अुनमें नामको भी नहीं है । अिनके ख़याल बहुत बलन्द होते हैं । अिनका सारा कलाम ग़दरकी लूटमारमें ज़ाया हो गया था मगर अुनके शागिर्द आज़ाद, हाफ़िज़, अन-

बरी, ज़हीरी वग़ैरहने बड़ी मेहनतसे अुसे कुछ हद तक फिरसे मुरत्तब (संग्रहीत) किया है। अिनके कलामका नमूना देखिये :—

लिखिये अुसे ख़तमें कि सितम अुठ नहीं सकता।
पर ज़ोफ़से हाथोंमें क़लम अुठ नहीं सकता॥
आती है सदाअे जर्से नाक़अे लैला।
पर हैफ़ कि मजनूंका क़दम अुठ नहीं सका॥
हर दाग़ मुआसी मेरा अिस दामने तरसे।
ज्यूँ हर्फ़ सरे काग़ज़े नम अुठ नहीं सकता॥
अितना हूँ तेरी तेग़का शर्मिन्दा अे अहसाँ।
सर मेरा, तेरे सरकी क़सम अुठ नहीं सकता॥
परदाअे दरे काबेसे अुठना तो है आसाँ।
पर परदअे रुख़सारे सनम—अुठ नहीं सकता॥
दुनियाका ज़रोमाल किया जमा तो क्या ज़ौक़।
कुछ फ़ायदा बे दस्त व करम अुठ नहीं सकता॥

दरियाअे अश्क चश्मसे जिस आन बह गया।
सुन लीजियो कि अर्शका अेवान बह गया॥
ज़ाहिद शराब पीनेसे काफ़िर हुआ मैं क्यों?
क्या डेढ़ चुल्लू पानीसे ईमाँ बह गया?
पंजाबमें भी वह न रही आब व ताबे हुस्न।
अे ज़ौक़! पानी अब तो वह मुलतान बह गया॥

—×—

मोमिन

(स. १८००—१८५२ ई.) मुहम्मद मोमिनख़ाँ 'मोमिन' दिल्लीके रहनेवाले थे। चंद रोज़ तक शाह नसीरके शागिर्द रहे मगर अुनके साथ ज़्यादा अर्से तक न बन सकी। फिर तो किसीकी शागिर्दी न की। कहते हैं कि जवानीमें अिनका चाल-चलन

अच्छा नहीं था जिससे अुस ज़मानेके कलाममें भद्दा और बेहूदा आशिक़ाना रंग भरा हुआ है। लेकिन आख़िरी अुम्रमें अुसमें दृढ़ता और मजबूती आ गयी। अपना हाफ़िज़ा, तिब्बका फ़न, नजूम (ज्योतिष) और शतरंजमेंकी काबिलियतके लिये यह बहुत मशहूर थे। अपनी क़ाबिलियत और ज़ाती जौहरका अुन्हें अिस दर्जा ख़याल था कि अुसके मुक़ाबलेमें लोगोंके अच्छे अच्छे गुणोंको हेच समझते थे। आज़ाद-मिज़ाजी और वतनकी दोस्ती अिनमें कूटकूटकर भरी हुआी थी।

अिनका कुल्लियात अिनके शागिर्द नवाब मुस्तफ़ा खाँ 'शेफ़्ता' ने मुरत्तिब किया है। अिसमें अुर्दूका अेक दीवान, क़सीदे, मुअम्मे, मुख़म्मस, तारीखें वग़ैरह हैं। लेकिन मोमिन तो अपनी तारीख़-गोअीसे ही ज़्यादा मशहूर हुअे। अुस फ़नमें अुन्हें कमाल हासिल था। तारीख़ निकालनेके नये नये ढंग अिन्होंने अीजाद किये। अिनका पढ़नेका ढंग भी बहुत अच्छा था। अिनके कलाममें नाज़ुक-ख़याली और बलन्द-परदाज़ी बेहद पायी जाती है। अिनकी तशबीहें बिलकुल ग़ैरमामूली और भावोंका चित्रण बिलकुल सही होता है। फ़ारसियतके वह बड़े प्रेमी थे जिससे अुनकी ज़बान कुछ बनावटी और मुश्किल हो गयी है। अिनकी तर्ज़ तो बड़ी अनोखी और दिलकश है मगर अिनका अिश्क़ बाज़ारी है।

अिनके शागिर्दोंमें 'शेफ्ता' 'तस्कीन' 'नसीम' 'वहशत' वग़ैरह बहुत मशहूर है।

अिनके कलामका नमूना देखिये :—

खुशी न हो मुझे क्योंकर क़ज़ाके आने की।
ख़बर है लाश पे अुस बेवफ़ाके आने की।
समझके और ही कुछ मर चला मैं अै नासिह।
कहा जो तूने नहीं जान जाके आने की॥
चली है जान नहीं तो कोअी निकालो राह।
तुम अपने पास तक अिस मुब्तलाके आने की॥
फिर अबके ला तेरे कुरबान जाअूँ जज़्बा अे दिल।
गये हैं याँ से वह सौगन्द खा के आने की॥

मेरे जनाज़े पे आनेका है अिरादा तो आ।
कि देर अुठानेमें क्या है सबाके आने की॥
मुझे यह डर है कि **मोमिन** कहीं न कहता हो।
मेरी तसल्लीको रोज़े जज़ा के आने की॥

——:*:*——

अुम्र सारी तो कटी अिश्क़े बुताँमें '**मोमिन**'।
आख़िरी वक़्तमें क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे॥

अिस ज़मानेके दूसरे शायरोंमें 'शेफ़्ता' 'तसकीन' 'नसीम' 'ज़हीर' 'नसीर' 'अनवर' वग़ैरह बहुत मशहूर हैं। 'ज़ौक़' 'ग़ालिब' और 'मोमिन' अिन तीन अुस्तादोंने अिस ज़मानेको रोशन किया। लखनअूकी शायरीमें जो भद्दी बातें पैदा हो गयी थीं अुनसे यह दिल्लीकी शायरी बहुत कुछ हद तक पाक रही। ज़बान भी ज़्यादा मुश्किल नहीं हुअी। अिसमेंसे बोल-चालके शब्दोंको लखनअूकी तरह निकाल बाहर नहीं किया गया। अिसलिये अिन अुस्तादोंकी शायरी आसान, दिलकश और प्यारी मालूम होती है। नये ज़मानेकी शायरीकी बुनियाद अिसी ज़मानेमें पायी जाती है।

अध्याय दसवाँ

रामपुर और हैद्राबाद

प्रारंभिकः

अवधकी सल्तनतके टूट जानेपर वहाँके शायर तितर-बितर हो गये। कुछ तो अपने मालिकके साथ और कुछ ग़दरके बाद कलकत्ते रवाना हुअे और वहाँ अुन्होंने नया लखनअू बसाया।

इसी ज़मानेमें ग़दरकी वजहसे दिल्लीकी सल्तनत टूट गयी और वहाँ चारों तरफ़ तबाही व बरबादीका आलम छा गया। बड़ों बड़ोंकी जानें और जायदादें ख़तरेमें पड़ गयीं तो फिर शेर व शायरीका ध्यान किसे हो सकता था? शायरोंका ताल्लुक़ तो कभी जनतासे आया ही न था अिसलिये अुनके सामने यह बड़ा सवाल पैदा हो गया कि वह अब क्या करें? अुनका मालिक और क़द्र करनेवाला बादशाह बहादुरशाह रंगूनमें अंग्रेज़ोंकी क़ैदमें पड़ा हुआ था। वहाँ वह क्योंकर जा सकते थे? अिसलिये अुन्होंने देसी दरबारोंमें ही रहना पसन्द किया। अिस ज़मानेके अमीर-अुमरा और नवाब बादशाहोंके पास शायरीके अलावा दूसरा कोअी काम तो था नहीं; अिसलिये अिन बेकार शायरोंको आसानीसे जगह मिल सकी। अिन दरबारोंमें रामपुर और हैदराबादको बहुत महत्त्व है। अुसमें भी फिर रामपुरका दर्जा ज़्यादा अूँचा है। अिसके अलावा फ़र्रुख़ाबाद, अज़ीमाबाद, मुर्शिदाबाद, टाँडा, टोंक, भूपाल, मंगरूल वग़ैरह स्थान भी क़ाफ़ी मशहूर हैं।

रामपुर

ज़्यादातर शायरोंने रामपुरको ही पसंद किया। इसके तीन प्रमुख कारण हैं। अेक यह कि यह रियासत दिल्ली और लखनअूके बीचमें आती है। यानी किसी भी दूसरी रियासतके बनिस्बत यह दोनों मरकिज़ोंको अेकसी

ही नजदीक है। दूसरे यह कि अिसके शासक खुद जबर्दस्त शायर और शायरोंके क़द्रदाँ थे। अिनामों और वज़ीफ़ोंसे वह अपने पास रहनेवाले शायरोंकी हमेशा मदद करते रहते थे। तीसरा और सबसे ज़बर्दस्त कारण यह था कि यहाँके नवाब अपने आश्रित आलिमों, अदीबों और शायरोंकी पूरी पूरी अिज़्ज़त करते थे। अुनको अपने गुलाम नहीं बल्कि साथी समझते थे; अुनकी नाजुक मिज़ाजियोंसे वह हमेशा वाक़िफ़ रहते और अुन्हें बर्दाश्त करते। अुनमें अितनी अक़्लमंदी थी कि अुन्होंने कुछ न कुछ काम हरेक शायरके सिपुर्द कर दिया जिससे अुनका भार रियासतपर न पड़े। अिस अिन्तज़ामसे शायरोंको भी नाराज़ होनेका मौक़ा न मिलता था।

नवाब यूसुफ़अलीखाँ 'नाज़िम' और उनके साहबज़ादे नवाब क़लबअलीखाँ 'नवाब' दोनों अच्छे शायर और नयी तर्ज़की अीजाद करनेवाले थे। दिल्ली और लखनअूकी तर्ज़ोंको मिलाकर अिन्होंने अेक तीसरी तर्ज़ शुरू की जो ज़बानके लिये मुफ़ीद साबित हो गयी। नासिख़के ज़मानेसे जो अेक बेजा लफ़्फ़ाज़ी और बनावटीपनका शौक़ ज़बानमें दाख़िल हो गया था वह जाता रहा और अब शायरीके सही सही भावोंको लोग समझने लगे और अुसके ठीक ठीक लफ़्ज़ोंसे वाक़िफ़ रहने लगे।

अमीर मीनाअी

मौ० अमीर अहमद मीनाअी हज़रत मख़दूम शाह मीनाके ख़ान्दानसे थे जिससे वह मीनाअी कहलाने लगे। 'अमीर' तख़ल्लुस करते थे। कुछ दिनों तक यह वाजिदअली शाह, नवाब लखनअूके दरबारमें रहे मगर ग़दरके बाद और और शायरोंकी तरह अिन्हें भी रोज़ीकी तलाशमें लखनअू छोड़ना पड़ा। वहाँसे यह रियासत रामपुरमें चले गये और नवाब यूसुफ़अली खाँ और नवाब क़ल्बअली खाँके अुस्ताद मुकर्रर हुअे। आख़िरमें हैदराबाद जाकर अिन्होंने अिन्तक़ाल किया। वहाँ अुस वक़्त दाग़के कलामका चर्चा था मगर अिन्हें दाग़से कभी रश्क़ न हुआ और न कभी अिन दोनोंमें किसी तरहका मनमुटाव ही हुआ। बल्कि यह दाग़के कलामकी दिलसे तारीफ़ करते थे।

स. १८२८-२९ अी.

अमीर साहब बड़े ज़हीन, मेहनती और जफ़ाकश (सहिष्णु) आदमी थे। वज़ादारी (अपने सिद्धान्तोंका अच्छी तरह पालन करना) और सादगीके लिये यह बहुत मशहूर थे। शुरू शुरूमें यह 'असीर' से अिसलाह लेते थे। 'सबा' 'रिन्द' 'ख़लील' 'सहर' 'अनीस' व 'दबीर' के मार्कोंने अिनपर बड़ा असर डाला जिससे अिनकी मश्क़ बहुत अच्छी हुअी। इनके शागिर्द और दोस्त निहायत कसरतसे थे। अिन्हें खत लिखनेका बड़ा शौक़ था। इनके ख़तोंका मजमूआ बड़ा आलीशान और दिलचस्प है। यह बहुत ही बामुहब्बत, रास्तबाज़ और हमदर्द थे। कुरानशरीफ़के हुक्मोंपर यह सख्तीके साथ अमल करते थे।

अिनका अिब्तदाअी कलाम कुछ भद्दासा मालूम होता है मगर बादमें वह बहुत अूँचे अुठ गये। इनकी ज़बान बड़ी साफ़, पाक और जोशीली है। शायरीके अलग अलग प्रकारोंमें अिनकी रसाअी (पहुँच) थी। शगुफ़्तगी (प्रसन्नता) ख़यालोंकी नज़ाकत, बलंद-परदाज़ी, मिठास, जोश, शर्म और हया अिनकी ज़ातके ख़ास जौहर हैं। अिन्होंने कभी भद्दा लफ्ज़ नहीं कहा न किसीकी हजो ही लिखी।

अिनका बहुत सा कलाम ग़दरमें और घरकी आगमें ज़ाया हो गया। फिर भी अिनकी नीचे लिखी किताबें बहुत मशहूर हैं:—अिरशादुस्सुलतान; मरातुलग़ैब (अुर्दू दीवान), सनमख़ानाअे अिश्क, अमीरुल्लुग़ात, नूरे तजल्ली वग़ैरह। अिनके शागिर्दोंमें रियाज़, ज़लील, हफ़ीज़ सरशार वग़ैरह बहुत मशहूर हैं।

अिनके कलामका नमूना देखिये:—

अिश्क़में जाँसे गुज़रते हैं गुज़रनेवाले।
मौतकी राह नहीं देखते मरनेवाले॥
दाग़े दिलसे मेरे कहता है ये अुसका जोबन।
देख अिस तरह गुज़रते हैं गुज़रनेवाले॥
आख़िरी वक़्त भी पूरा न किया वादाअे वस्ल।
आप आते ही रहे मर गये मरनेवाले॥

जान देनेको कहा मैंने तो हँसकर बोले।
तुम सलामत रहो हर रोज़के मरनेवाले॥
तेग़ व खंजरसे न झगड़ा तेग़ व गरदनका चुका।
चल दिये मोड़के मुँह फैसला करनेवाले॥
आसमाँपर जो सितारे नज़र आये **अमीर**।
याद आये मुझे दाग़ अपने उभरनेवाले॥

अमीरके अलावा 'ज़लील' 'तसलीम' वग़ैरह बहुतसे शायर रामपुरके दरबारमें थे। यह बड़े आला दर्जेके शायर थे मगर हरेकका ज़िक्र यहाँ नामुमकिन है। वैसे तो दाग़ भी पहले रामपुर ही में थे लेकिन चूँकि अिनको हैदराबादने ही अितनी शुहरत दे दी अिसलिये अुनका शुमार हैदराबादी शायरोंमें किया गया है।

हैदराबाद

रामपुरकी तरह हैदराबादने भी अुस वक़्तके शायरोंका बड़ी अिज़्ज़तके के साथ स्वागत किया। वैसे तो हैदराबाद जाना बड़ी मुश्किल बात थी क्योंकि आजकी तरह रेल या मोटरोंका अिन्तज़ाम न होनेसे अितना लम्बा सफ़र करना कोअी मामूली बात नहीं थी। मगर पेट और नाम तो आदमीसे सब कुछ करा सकते हैं। दिल्ली और अवधका सहारा टूट जानेके बाद वहाँके शायरोंने हैदराबादकी क़द्रदानीकी बात जो सुनी तो बड़ी बड़ी मुसीबतें अुठा-कर भी वह हैदराबाद पहुँच गये। वहाँके नवाब खुद अच्छे शायर और शायरोंके क़द्रदाँ थे अुन्होंने अिनका दिलसे स्वागत किया। रामपुर और हैदराबादमें अेक बड़ा फ़र्क़ यह है कि रामपुर और अुसके आसपासके मुल्क-की ज़बान अुर्दू या कमसे कम हिन्दुस्तानी है और हैदराबाद और अुसके अिर्द गिर्द तेलुगू, मराठी या कानडी भाषाअें चलती हैं। अिसलिये यहाँ अुर्दू समझनेवालोंकी तादाद अुतनी ज़्यादा नहीं है। मगर फिर भी नवाबों, अमीरों और आलिमोंकी कोशिशसे वहाँके चिराग़की बत्ती ज़्यादा रोशन होती गयी और आज भी होती जा रही है। अिसके खिलाफ रामपुरकी रोशनी कुछ मद्धमसी पड़ गयी। अिसका कारण यह भी हो सकता है कि वहाँ आलिमों

को जो अिज़्ज़त मिलती थी अुससे ज़्यादा अिज़्ज़त अुन्हें अंग्रेजी सरकारसे मिलने लगी हो।

दाग़

स. १८३१–
१९०५ अी.

नवाब मिर्ज़ा खाँ 'दाग़' दिल्लीके रहनेवाले थे। ६।७ बरसकी अुम्रमें अिनके हकीक़ी वालिदने अिन्तकाल किया तो अिनकी माँने बहादुरशाह के बेटे मिर्ज़ा फ़खरोके साथ निकाह कर लिया जिससे यह भी लाल किलेमें जा पहुँचे। वहाँ शेर व सखुनका चर्चा सुनकर अिन्हें भी शायरीका शौक़ हुआ और यह 'ज़ौक़' के शागिर्द बन गये। खुशनवीसी और घुड़सवारीका अिन्हें बहुत शौक़ था। थोड़े ही अर्सेमें यह बहुत मशहूर हो गये। जिस वक़्त लखनअूमें अमीर साहब प्रसिद्ध हो रहे थे अुसी वक़्त दिल्लीमें दाग़ने शुहरत पाना शुरू किया था।

स० १८५७ अी. के ग़दरमें यह दिल्ली छोड़कर रामपुर गये और नवाब क़ल्बअलीखाँ के मुसाहिब हुए। यहाँ अितनी अिज़्ज़त और आरामसे ज़िन्दगी गुज़री कि अुसे यह आरामपुर कहते थे। नवाबकी मौत हो जानेपर रामपुर छोड़कर यह हैदराबाद चले गये जहाँ अिनका बड़ा मान-सम्मान हुआ। यह निज़ामके अुस्ताद मुक़र्रर हुअे और अिन्हें माहवार पंद्रह सौ रुपये तनख़्वाह मिलने लगी। अितनी बड़ी अिज़्ज़त और तनख़्वाह शायद ही किसी शायरके नसीब हुअी होगी। अिनके वहाँ जाने पर शायरीका बाज़ार फिर गर्म हो गया। अुनकी हरदिलअज़ीज़ीने अुन्हें हज़ारों शागिर्द और दोस्त बहाल किये और वह बड़ी क़द्रकी निगाहोंसे देखे जाने लगे। यह तबीयतके निहायत खुश और मिज़ाजके बेहद रंगीं थे। अपने यार-दोस्तोंसे बड़ी मुहब्बत और मेहर-बानीसे पेश आते थे। अपने ज़मानेके शायरोंके साथ दोस्ताना ताल्लुकात रखते थे जो कि अुस ज़मानेके लिए बड़ी अचरज की बात थी। यह न किसी-से लड़े झगड़े न किसीकी हजो ही कही।

अिनकी ज़बान निहायत साफ़, सादा और सुलझी हुअी थी। बयानमें शोखी और बाँकपन था। अिनकी तर्ज़ आम-पसन्द और दिलचस्प थी।

डेढ़ हज़ारसे ज़्यादा शागिर्द अिसलाहके वास्ते कलाम भेजा करते थे, चुनांचे अिस कामके लिए बाकायदा अेक दफ़्तर खोला गया था।

अिनका कलाम बहुत बड़ा और वसीअ है। असलमें वह अेक बहुत बड़े गज़्ज़ाल थे। क़सीदे, क़ितअे, रुबाअियाँ वग़ैरह भी अिनसे यादगार हैं पर अुनपर भी ग़ज़लका रंग जमा हुआ है। अिनके कलाममें कोअी खास जिद्दत (नाविन्य) नहीं पायी जाती। तशबीहों और तमसीलोंमें ही नहीं बल्कि रुबाअियोंमें भी अदब व अिखलाक़के बजाय वही पुराने ढर्रेका आशि-काना रंग झलकता है। अिनकी तारीखें आला दर्जेकी मालूम होती हैं।

जो हो, मीठी, सुरीली और आशिक़ाना शायरी के वह मुस्लिमअुस्स-बूत (प्रमाणित) अुस्ताद माने जाते हैं। पेचीदा तरकीबों और मोटे मोटे अजनबी अरबी-फारसी लफ़्ज़ोंको अिन्होंने अपने कलाममें जगह नहीं दी है जिससे वह आसान, मीठा और बेतकल्लुफ़ हो गया है। लफ़्ज सादे व मामूली, तरकीबें सीधी-सादी व दुरस्त, बंदिश चुस्त और शेर नपे-तुले, ज़ोर-दार और बाअसर होनेकी वजहसे अुनका रंग अुनके ज़मानेमें अिस क़द्र मक़-बूल हुआ कि अुनके सैकड़ों पैरव और नक़ल करनेवाले पैदा हुअे।

हालाँकि अिनके कलाममें असलियत और फ़िलसफ़ा मुतलक़ नहीं है, फिर भी अुर्दू शायरीमें अिनका दर्जा बहुत ऊँचा है। यह सही है कि अिनके माशूक़ अक्सर बाज़ारी होते हैं और अिनके बाज शेर भले कानोंके सुनने-लायक नहीं हैं। तशबीहें अिनकी बिल्कुल मामूली और पामाल (वरती हुअी) हैं जिनको सुनते सुनते कान थक गये हैं और दिल अूब गये हैं। मगर अिन सब बुराअियोंके होते हुए भी हमें यह कहना पड़ेगा कि वह ज़बानके बहुत बड़े ख़िदमतगार थे।

अिनके कलामकी यह खासियत है कि अुससे आम लोग आसानीसे लुत्फ़ उठा सकते हैं मगर आलिमोंमें अुनकी ज़्यादा अिज़्ज़त नहीं हो सकती। अुनके मुकाबलेमें अमीरको पैसा और नाम बहुत कम मिला, फिर भी अमीरके सामने यह कुछ अदना दर्जेके मालूम होते हैं।

अिनके चार दीवान मशहूर हैं। गुलज़ारे दाग, आफ़ताबे दाग, महताबे दाग और यादगारे दाग। अिन्होंने 'फ़रयादे दाग' नामकी अेक मसनवी भी लिखी है जिसमें अेक वेश्याके अिश्कका हाल है।

अिनके शागिर्दोंमें आसफ़, अिक़बाल, सायल, बेखुद, अहसन माहरवी वग़ैरह बहुत मशहूर हैं ।

कलामका नमूना मुलाहिज़ा हो ।

वो दिल लेके चुपकेसे चलते हुअे ।
यहाँ रह गये हाथ मलते हुअे ॥
न अितराअिये देर लगती है क्या ।
ज़मानेको करवट बदलते हुअे ॥
मुहब्बतमें नाकामियोंसे अखीर ।
बहुत काम देखे निकलते हुअे ॥
करे वादा पर वादा वो हमको क्या ।
ये चकमें ये फिकरे हैं चलते हुअे ॥
जरा **दाग़** के दिल पै रक्खो तो हाथ ।
बहुत तुमने देखे हैं जलते हुअे ॥

न पूछिये मेरे रोजे सियह की जुल्मत ।
चिराग़ लेके भी ढूँढ़ा तो आफ़ताब न था ॥

लोग कहते हैं बना दिल्ली बिगड़कर लखनअू ।
पर कहाँ अे **दाग़** अुस अुजड़े हुअे गुलका जवाब ॥

-

अिस ज़मानेके और भी बहुतसे शायर मशहूर हैं । मसलन् नवाब महबूब अली खाँ 'आसफ़', महाराजा चंदूलाल 'शादाँ,' 'बाकी,' 'शाद,' 'अुस्मान,' वगैरह ।

अिसी ज़मानेमें हैदराबादमें अंजुमने तरक़्की अे अुर्दू और अुस्मानिया युनिवर्सिटीकी भी बुनियादें डाली गयीं । यह दोनों अंजुमनें आजकल अपनी पुरबहारमें हैं । अुर्दू ज़बानकी तरक्कीमें अिनका बहुत बड़ा हाथ है । युनिवर्सिटीकी किताबें बनानेके लिये दारुत्तसनीफ़ और दारुत्तर्जुमा नामकी दो अंजुमनें और बनायी गयी हैं जहाँसे दरसी किताबें और अिस्तिलाहें निक-

लती रहती हैं। अुर्दू लिपिमें सुधार करनेके लिये कमिटियां बनायी गयी हैं जो बड़ी मेहनतके साथ काम कर रही हैं।

अंजुमनकी तरफ़से छः माही रिसाला 'अुर्दू,' माहवार रिसाला 'सायन्स' और पन्द्रह रोज़ा अख़बार 'हमारी जबान' निकलता है जिसमें बड़े अहम और दिलचस्प मज़मून आते हैं। अिसके सेक्रेटरी मौलवी अब्दुल हक़ हैं जो बहुत ही परिश्रमी व्यक्ति हैं।

अध्याय ग्यारहवाँ

नयी रोशनीका ज़माना

तमहीद:

अंग्रेजी सल्तनत यहाँ अच्छी तरह जम गयी जिससे लोगोंके दिमाग़में नयी रोशनी फैल गयी । अंग्रेजी तालीम वैसे तो आम हो रही थी मगर असलमें उससे तो उन्हीं लोगोंने ज्यादा फ़ायदा उठाया जो पहलेसे ही पढ़े लिखे कहे जाते थे । बहुत-सी सल्तनतें और अमीर उमरा मिट गये; जो बाकी बचे उनके सामने शेर व शायरीसे ज़्यादा जरूरी सवाल पैदा होने लगे । रियासतोंको मजबूर हो कर अपनी रिआयाकी ओर ध्यान देना पड़ा और अमीरोंको फ़िक्र होने लगी कि अपनी अपनी अमीरी और जायदादकी हिफ़ाजत कैसे होगी । इसलिये वह जमाना अब जाता रहा जब किसी भी ऐरे-गैरे सुस्त और काहिल शायरको दो चार शेर कहनेपर सैकड़ों अशर्फ़ियाँ आसानीसे मिल जाती थीं । अब शायरीका धंधा बैठ गया । किसी और कामसे पहले पेटकी पूजाकी फ़िक्र सवार होती फिर शेर व शायरीका ख़याल !

खुद ज़बानमें भी काफी तब्दीलियां हो रही थीं । मर्सियानिगारोंने और नज़ीर अकबराबादीने नये रंगके वास्ते रास्ता तैयार कर दिया था । हालाँकि उस ज़मानेके लोगोंने नज़ीरके रंगको क़द्रकी निगाहसे न देखकर एक फिज़ूल और हेच चीज समझा मगर ज़मानेके इन्कलाबके सामने उनकी राय फ़ीकी पड़ गयी । अब लोगोंको पुराने रंगमें लुत्फ़ नहीं आता था हालाँकि पुराने शायरोंकी क़द्रदानीमें किसी तरहकी कमी नहीं आयी । सिर्फ शायरीका दायरा विस्तृत होता गया । लोग चाहते थे कि पुराना रंग भी रहे मगर बनावटीपन और तकल्लुफसे ख़ाली होकर । इसलिये नये नये

विषय और मज़मून ज़्यादा मक़बूल होने लगे। ग़ज़लें कम होती गयीं और मुसद्दस व मसनवीको अधिक लोकप्रियता मिलने लगी। अिससे पहले अुर्दूमें कुदरती मज़मूनोंका दायरा बहुत तंग था सो अब बढ़ने लगा। ख़याली, बयानिया, तारीखी और नसीहतसे भरी हुअी नज़्में नये नये लिबास पहन कर जनताके सामने आयीं। यह कहना बेजा न होगा कि यह सब तब्दीलियाँ अँग्रेजी ज़बानके मताले (अध्ययन) से वजूदमें आयीं। ब्लैंक वर्सके ढंगकी चंद अंग्रेजी बहरोंनेभी ज़बानमें जगह पानेकी कोशिश की मगर अिसको पब्लिकने पसंद नहीं किया। मौ. अज़्मतुल्ला साहबने हिन्दी दोहरों और लफ्जोंको अपनाया जिससे अुनका कलाम दिलकश और बामज़ा मालूम होने लगा। हालीने मुसद्दसका दर्जा अूँचा करके अुसे ग़ज़लकी मक़बूलियत बख्शी।

अंग्रेज़ी तालीमके असरने अुर्दू ज़बानको क़दामत-परस्ती (प्राचीनताकी पूजा) की ज़ंजीरोंसे आज़ाद किया। नये ख़याल और लफ़्ज़ ज़बानमें शरीक हो गये। मुबालग़ेसे भरी हुअी बातें छोड़ दी गयीं और सादगी, सफ़ाअी, असलियत वग़ैरह गुण क़ीमती समझे जाने लगे।

लेकिन अिसके यह मानी नहीं कि अिस वक़्तकी हरेक चीज़ अच्छी ही थी। हरगिज़ नहीं। ज़मानेकी कुछ बुराअियाँ भी ज़बानमें आ गयीं। मसलन् मुक़र्रर किये हुये अरूज़ (पिंगल) के क़वायदके बारेमें लापरवाहीकी जाती थी साथ ही अंग्रेजी शब्दोंकी भरमार होने लगी। क़ाबिल और नाक़ाबिल हर क़िस्मके मज़मूनको शेरके ढाँचेमें डाला जाने लगा।

फिर भी हमको मानना पड़ेगा कि नुक़सानोंसे फ़ायदे ही ज्यादा हुये।

अिस ज़मानेमें शायरोंकी कअी किस्में हो गयीं। इनमेंसे तीन तो बिलकुल साफ़ साफ़ नज़र आती हैं। अेक तो वह हैं जो अब भी अुसी पुरानी लकीर के फ़क़ीर बनकर चलते रहे; मौजूदा ज़मानेको भूलकर जो अुसी ख़याली दुनियाँमें विहार करते रहे। दूसरे वह हैं जो हर अेक मग़रिबी चीज़के आशिक़ और चाहने वाले थे। पुराने तौर-तरीक़ोंको हिक़ारतकी नज़रसे देखना और भद्दे भद्दे तर्जमें तैयार करना अुनका ख़ास काम रहा। तीसरी क़िस्म अुन

शायरोंकी है जो मध्यम मार्गी हैं। यह पुराने और नये दोनों रंगोंको अिज़्ज़त की निगाहसे देखते हैं। दोनों तर्ज़ोंकी अच्छी अच्छी सिफ़तोंको मिलाकर अिन्होंने अपनी अेक निराली तर्ज़ निकाली जो आम व ख़ासमें मक़बूल हो गयी। अिनमें मौलिकता काफ़ी मात्रामें पायी जाती है।

पहले दो ढाँचोंके शायरोंसे तो हमें ज़्यादा सरोकार नहीं है, अिसलिये कि अुनकी तादाद बहुत कम है और अुनमें अैसे कोअी बड़े शायर नहीं हुअे जिनका नाम आसानीसे ज़बानपर आ सके। चुनांचे हम तीसरी क़िस्मके शायरोंपर ही ज़्यादातर ध्यान देना चाहते हैं। अिनमें आज़ाद, हाली, शरर, सरूर, अिक़बाल, अकबर, वग़ैरह बहुत मशहूर हैं।

आज़ाद

मृत्यु शम्सुलअुलमा मौ. मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' नये **स. १६१० अी.** ज़मानेके बहुत बड़े अदीब, मशहूर नस्सार (नस्र यानी गद्य लिखने वाले), नामी गरामी पारखी, और तालीमके फ़नके बहुत बड़े माहिर तथा अेक मशहूर व मारूफ़ (प्रसिद्ध) अख़बार-नवीस थे। यह दिल्लीके रहने वाले थे। अिनके वालिद ज़ौक़के दोस्त थे जिससे यह ज़ौक़के शागिर्द बन गये। बादमें अिन्होने 'अैश' को अपना अुस्ताद बनाया। पंजाबके तालीमी महकमेके डाअिरेक्टर हालराअिडकी मददसे अिन्होंने 'अंजुमने पंजाब नामकी अेक संस्थाकी बुनियाद डाली जिसका मक़सद अुर्दू शायरीमें नयी रोशनी फैलाना था। अिस अंजुमनके जो सदस्य होते वह अपनी शायरीमेंसे मुबालग़े, तशबीहें, तमसीलें वग़ैरहकी बेढंगी भरमारको निकाल देते, अितना ही नहीं बल्कि क़ाफ़ियों और रदीफ़ोंपर भी बिलकुल ध्यान न देते थे।

आज़ादने अपनी दो मसनवियाँ 'नज़्मे आज़ाद' और 'शबेक़द्र' अिस अंजुमनमें पढ़ीं जिनकी अुस वक़्त बड़ी तारीफ हुअी। वह अंजुमन अगर ज़्यादा अरसे तक चलती रहती तो अुससे ज़बानको बहुत फ़ायदा पहुँचता, मगर बदक़िस्मतीसे अैसा न हो सका। पुराने ख़यालके लोगोंके हठके कारण वह बंद पड़ गयी। 'मार्फ़त अिलाही' 'शराफ़त हक़ीक़ी' वग़ैरह कुछ नज़्में अिन्होंने अंग्रेजी ढंगपर भी लिखी हैं। अिनके शुरू शुरूके कलाममें 'हुब्बेवतन'

'ख़्वाबे अमन' 'सुबहे अुम्मीद' वग़ैरह पुराने ढंगकी मसनवियाँ मिलती हैं।

लेकिन आज़ाद असलमें शायरीके अुतने प्रेमी नहीं थे। अुनकी तबीयत आलिमाना थी, अिसलिये अुन्हें शायरीसे कोअी ख़ास मुहब्बत न थी। नज़्म-की बनिस्बत वह नस्रको ज़्यादा ज़रूरी और महत्त्वकी समझते थे। और नसरमें अिन्होंने अच्छी तबियत-आज़माअी की। यहाँ तक कि हालके ज़मानेके नस्सारोंके वह अुस्ताद माने जाते हैं।

अिनकी ज़बान साफ़, आसान, दिलकश और बड़ी मज़ेदार है।

कलामका नमूना देखिये :----

हम अुनसे दूर ब-ज़ाहिर हज़ार बैठे हैं।
य' लाख जानसे दिलमें निसार बैठे हैं।
अिधर भी चश्मे अिनायत हो ज़रा अै साक़ी।
कि मस्त देरसे अुम्मीदवार बैठे हैं॥
निगाहे नाज़का साक़ीके अेक है य' कमाल।
कि बज़्म हो गयी मदहोश वो यार बैठे हैं॥
कमान अब्रूअे जानाँके दिलसे हूँ क़ुर्बां।
कि जितने तीर हैं सीनेके पार बैठे हैं॥
तुम्हारे ज़ुल्फ़को थे बाँधते परीशाँ हम।
सो दामन आज लिये तार तार बैठे हैं॥
अमामा शेख़का छोड़ेंगे क्या भला वो रिन्द।
जो अपनी पगड़ीको पहले अुतार बैठे हैं॥
क़िमारे अिश्कमें अब क्या लगायेंगे **आज़ाद**।
कि नक़द दिल तो पहले ही हार बैठे हैं॥

——*:*——

हुआ लैला प' मजनूँ कोहकन शीरी प' सौदाअी।
मुहब्बत दिलका अिक सौदा है जिसकी जिससे बन आयी॥

——*:*——

हाली

स. १८३७—   शम्सुलउलमा ख़्वाजा अल्ताफ़ हुसेन
१९१४ अी.   'हाली' पानीपतके रहनेवाले थे।

देहातमें रहनेकी वजहसे अिनकी तालीम सिलसिलेवार न हो सकी। यह बारबार दिल्ली भाग जाते और घरवाले फिर फिर पकड़ ले जाते। अिसलिये वहीं घरपर रहकर अुन्हें मश्क़ करनी पड़ी। कुछ दिनों बाद वह जहाँगीराबादके मुस्तफ़ाखाँ 'शेफ़्ता' की मुलाजिमत करने लगे जिससे अिन्हें अपनी मश्क़में काफ़ी फ़ायदा पहुँचा। यहाँसे वह लाहौर चले गये जहाँ अुन्हें गवर्मेंट बुकडेपोमें अुर्दू तर्जुमोंकी अिबारत देखनेका काम मिल गया। यह काम करते हुअे अुन्हें अंग्रेजी जबान, खयाल और अुन्हें अदा करनेकी तर्ज़से अेक खास लगाव पैदा हुआ जिसका असर अुनके कलामपर पूरी तरह पड़ा हुआ दिखाअी देता है।

हाली निहायत ख़लीक़ (सुशील) मिलनसार, हलीमुत्तबअ (सहनशील) और क़ौमसे सच्ची मुहब्बत करनेवाले शख़्स थे। क़ौमी हमदर्दी अुनमें कूटकूट कर भरी थी। हालीसे पहले नज़ीरको छोड़कर दूसरे शायरोंने जबानकी भले ही चाहे जितनी ख़िदमत की हो, मगर अुससे क़ौमको शायद ही कोअी ठोस फ़ायदा पहुँचा हो। हालीही वह पहले कवि हैं जिनके दिलने क़ौमकी दर्दीली आवाज सुनी। फ़िरक़ावाराना झगड़ोंसे वह हमेशा दूर रहे। मिर्ज़ा 'ग़ालिब' के यह सबसे नामवर शागिर्द हैं। 'अंजुमने पंजाब' में यह भी शरीक थे। यहाँ अिन्होंने 'बरखारुत' 'निशाते अुम्मीद' 'हुब्बेवतन' वग़ैरह नज़्में पढ़ीं जिससे यह बहुत जल्द मशहूर हो गये।

हाली साहबपर सर सैयद अहमद का बहुत बड़ा असर था। वह सर साहबके बराबर आख़िरतक हामी रहे। अेक बड़े अरसे तक वह अलीगढ़ युनिवर्सिटीके ट्रस्टी भी रहे। सर साहबके कहनेसे हालीने 'मुसद्दसे हाली' नामकी अेक मसनवी लिखी। अुर्दू ज़बानमें यह सबसे ज़्यादा मशहूर और मक़बूल तसनीफ़ समझी जाती है। अिस मसनवीने अुर्दू शायरीमें अेक नया दौर शुरू किया। अिसके बाद अुर्दूमें क़ौमी और वतनी नज़्में कसरतसे

लिखी जाने लगीं। मुसलिम समाजको गहरी नींदसे जगाकर कार्यप्रवृत्त करानेका काम अिस मुसद्दसने किया। अुर्दू जाननेवाले मुसलमानोंमें शायद ही अैसा कोअी होगा जिसने मुसद्दसको बड़े चावसे न पढ़ा हो। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रकवि गुप्तजीकी 'भारत भारती' को जो स्थान मिला है वही स्थान अुर्दूमें 'मुसद्दसे हाली' को प्राप्त है। अिस मुसद्दसने हालीको अेकदम अेक अूँचा क़ौमी शायर बना दिया।

अिनकी 'मुनाजाते बेवा' और 'चुपकी दाद' मसनवियाँ भी बहुत ही मशहूर हैं। वैसे तो अिनकी सभी मसनवियाँ खूब मक़बूल हो गयीं क्योंकि अुनकी ज़बान निहायत आसान, बेतकल्लुफ़, और साफ़ है और बात कहनेका ढंग बिलकुल नैचरल है। अिन्होंने मर्सिये भी बहुत अच्छे कहे हैं। सबसे पहले अिन्हींने ग़ज़ल और क़सीदेमें नया रंग शामिल किया। अिबारतको बनावटीपनसे पाक किया और आनेवालोंके लिये रास्तेको साफ़ कर दिया। दर्द व असर तो अिनमें भरा हुआ है।

अेक ख़ामी अिनमें ज़रूर रही है और वह यह कि कहीं कहीं वह पिंगलके क़ायदोंसे बाहर निकल गये हैं। लफ़्ज़ोंकी सेहत और मुहावरोंकी शुद्धिका ख़याल अुन्हें कम रहता है। कभी कभी अनोखे अंग्रेजी शब्दोंका भी अिस्तेमाल यह कर जाते हैं जिससे रसमें भंग होनेका डर रहता है। फिर भी यह तो माननाही पड़ेगा कि वह अेक बहुत अूँचे दर्जेके शायर थे। कलामका नमूना मुलाहिज़ा फ़रमाअिये :—

जागनेवलो ग़ाफ़िलोंको जगाओ। तैरनेवाले डूबतोंको तिराओ॥
तुम अगर हाथ पाँव रखते हो। लँगड़े लूलोंको कुछ सहारा दो॥
तन्दुरुस्तीका शुक्र क्या है बताओ। रंज बीमार भाअियोंका बँटाओ॥
तुम अगर चाहते हो मुल्ककी ख़ैर। न किसी हमवतनको समझो ग़ैर॥
हो मुसलमाँ अिसमें या हिन्दू। बौध मज़हब हो या कि हो ब्रह्मू॥
सबको मीठी निगाहसे देखो। समझो आँखोंकी पुतलियाँ सबको॥

*　　　*　　　*

मरने प' मेरे वह रोजोशब रोयेंगे।
जब याद करेंगे मुझे तब रोयेंगे॥

अुल्फ़त पै, वफ़ा पै, जाँ-निसारी प' मेरी।
आगे नहीं रोये थे तो अब रोयेंगे ॥
पर अुस क़ौमे ग़ाफ़िलकी ग़फ़लत वही है।
तनज़्ज़ुल प' अपनी क़नाअत वही है ॥
मिले ख़ाकमें पर रअूनत वही है।
हुअी सुबह और ख़्वाबे राहत वही है ॥

न अफ़सोस अुन्हें अपनी ज़िल्लत प' है कुछ।
न रश्क और क़ौमोंकी अिज़्ज़त प' है कुछ ॥

बहायमकी और अुनकी हालत है यक-साँ।
कि जिस हालमें हैं अुसीमें हैं शादाँ ॥
न ज़िल्लतसे नफ़रत न अिज़्ज़तका अरमाँ।
न दोज़ख़से तरसाँ न जन्नतके ख़्वाहाँ ॥

लिया अक़्ल व दीं से न कुछ काम अुन्होंने।
किया दीने बरहक़ को बदनाम अुन्होंने ॥

सुरूर

स. १८७६ — १९१० अी. मुन्शी दुर्गा सहाय 'सुरूर' जहाँनाबादके रहनेवाले थे। अिनकी ज़िन्दगी मुसीबतोंसे भरी हुअी थी। यह आज़ाद मिज़ाज़ और मस्त थे। मज़हबी बातोंमें ये बिलकुल लापरवाह थे। अिनके कलाममें अिन चीज़ोंकी भड़कीली तस्वीरें नज़र आती हैं। मैनोशी (मद्यपान) की शिद्दतकी वजहसे अिनकी ज़िंदगीका वक़्तसे बहुत पहले ख़ात्मा हो गया। लेकिन अितनी छोटीसी अुम्रमें अिन्होंने जो नाम और शुहरत हासिल की वह बड़े बड़े बूढ़ोंको भी नसीब न हुअी। अुनके रहने सहनेके ढंगसे ही मालूम होता था कि वह अेक हक़ीक़ी शायर हैं।

अिनकी शायरीमें पुराने और नये दोनों रंग मौजूद हैं। बल्कि यह कहना बजा होगा कि अिन दोनों तर्ज़ोंकी अच्छी अच्छी बातोंको मिला कर

अिन्होंने अपनी अेक नयी तर्ज़ अीजाद की। अिनके कलाममें लफ़्ज़ोंकी सफ़ाअी, बलन्द ख़याली, और पाक़ीज़गी सब मिली हुअी हैं।

मीर तक़ी 'मीर' की तरह अिनमें भी गहरे भाव, दर्द और असर कूटकूटकर भरे हुअे हैं। अिनका देश-प्रेम भी काफ़ी आला दर्जेका है। हिन्दुस्तानके हिन्दुस्तानी क़ौमी शायरोंमें अिनका मर्तबा बहुत अूँचा है। किसी ख़ास जमायत या फ़िरक़ेकी तरफ़दारी अिन्होंने नहीं की। अिनकी वतनी नज़्मोंमें सच्चा जोश और आला ख़याल कसरतसे हैं। अिनकी आशिक़ाना नज़्में भी बहुत मक़बूल हैं। अिनकी तारीख़ी और मज़हबी नज़्में तो अुर्दू शायरीमें बिलकुल बेजोड़ हैं।

अिनकी अेक ख़ासियत यह है कि अपने अुर्दू शेरोंमें अिन्होंने हिन्दी लफ़्ज़ोंको बड़ी खूबीसे खपाया जिससे शेरके हुस्नमें अच्छा अिज़ाफ़ा हुआ। पुराने और नये ठेठ हिन्दीके शब्द अिन्होंने अैसी अुस्तादीके साथ बरते हैं कि देखते ही बनाता है। अिसके कारण अिनकी ज़बान निहायत प्यारी और मीठी बन गयी है

अिनकी मशहूर तसनीफ़ें यह हैं :—

दीवारे कुहन, हसरते शबाब, ख़ाके वतन, यादे वतन,
नलदमयंती, नूरजहाँ, पदमिनी, शमा व परवाना, वग़ैरह।

अंग्रेज़ी नज़्मोंके तर्जुमे भी अिन्होंने किये हैं। अिनका कलाम 'खुमख़ाना अे सुरूर' और 'जामे सुरूर' नामकी दो जिल्दोंमें अिकट्ठा किया गया है।

अिनका बहुत-सा कलाम ज़ाया हुआ और बहुत-सा लोगोंने हथिया लिया।

कलामका नमूना देखिये —

जारी रहेगा यूँ ही तू अो वतनके चश्मे।
अन्दाज़ खुश ख़रामी हरगिज य' कम न होंगे॥
अै ग़मगुसार तिफ़्ली! लेकिन य' ग़म है मुझको।
साहिल प' आह! तेरे अपने क़दम न होंगे॥
हिलती रहेंगी यूँ ही फूलोंकी तेरे बेलें।
झोंके नसीमके यह क्या सुबह-दम न होंगे?

तैरा करेंगे यूँ ही मुर्ग़ाबियोंके जोड़े ।
साहिल प' आह तेरे अपने क़दम न होंगे ॥
खेला करेंगी तुझसे सूरजकी किरनें दिन में ।
क्या शबको चाँदनीके सामाँ बहम न होंगे ?
रौनक़ यही रहेगी तेरी वतनके चश्मे ।
साहिल प' आह ! तेरे अपने क़दम न होंगे ॥

(चश्माए वतन)

—•○•○•—

अध्याय बारहवाँ

कलके शायर

अिस आख़िरी अध्यायमें हम अुन दो-तीन चुने हुए शायरोंका ज़िक्र करनेवाले हैं जो अब अिस दुनियामें शरीरसे नहीं रहे हैं लेकिन जिनकी ज़बानकी ख़िदमतें दुनियाके अन्त तक हमेशा याद रहनेवाली हैं । ये तीन शायर हैं--'अकबर' अिलाहाबादी, चकबस्त, और अिक़बाल। तीनों अपने अपने ढंगके बेजोड़ और बेनज़ीर हैं। अिनकी बराबरी करनेवाला अब तक कोअी नहीं हुआ है । यह ज़माना बीसवीं सदीका पहला हिस्सा है । वैसे तो अिस ज़मानेमें दूसरे बहुतसे बड़े बड़े शायर गुज़रे हैं मगर अिन तीनोंकी बात कुछ और ही है ।

अकबर

स. १८४६-१९२१ अी.

सैयद अकबर हुसेन रिज़्वी, 'अकबर' बारा, ज़िला अिलाहाबादके रहनेवाले थे । अपने पुराने ढंगके वालिदका असर अिनपर बहुत पड़ा था जिससे ज़िन्दगीमें यह ख़ुद कभी जानबूझकर मज़हबके ख़िलाफ नहीं गये और औरोंको भी वैसा करनेसे रोकते रहे । वह जानते थे कि नयी रोशनीने देशवालोंकी आँखोंको चकाचौंध कर दिया है और अगर अुन्हें होशमें लाकर सच्चे रास्ते पर ले जाना है तो तीखे और कड़ुवे लफ़्ज़ोंसे काम नहीं चलेगा । अिसलिए अुन्होंने हँसी-मज़ाक़ और चुलबुलेपनके रास्तेको पसन्द किया और अुसपर अन्त तक चलते रहे । अुनका यह रास्ता अितना मुश्किल था कि हज़ार कोशिश करने पर भी अुनके बाद दूसरा कोअी भी शख़्स अुसपर न चल सका और वह अपने ढंगके अेक ही रह गये ।

अकबर अपने ज़मानेकी अेक बहुत बड़ी हस्ती थे । अेक बेमिसाल शायर

होनेके अलावा वह अेक अच्छे नासेह (अुपदेशक) और सूफ़ी भी थे। नज़्म और नस्र दोनोंमें अुनको अच्छा कमाल हासिल था। मज़ाक़ व ज़राफ़त-के अलावा तहज़ीब, सचाअी, हमदर्दी और मेहमाननवाज़ी अुनके खास जौहर थे। मज़हबी झगड़ों और तास्सुबोंसे यह कोसों दूर रहते थे अिसलिये अिनके दोस्तोंमें कअी हिन्दू भी थे।

यह अरबी, फ़ारसी और अंग्रेजीसे अच्छी तरह वाक़िफ़ थे। अिनके अेक ख़तसे मालूम होता है कि यह हिन्दी भी सीखना चाहते थे मगर न सीख पाये। शुरू शुरूमें यह 'आतिश' के शागिर्द थे मगर बादमें गुलाम हुसेन 'वहीद' को कलाम दिखलाने लगे। अिनके कलामको पाँच हिस्सोंमें बाँटा जाता है जिन्हें पाँच दौरोंका नमूना कहते हैं। अिन दौरोंसे यह भी मालूम हो जाता है कि अुम्रके बढ़नेके साथ साथ अिनके कलाममें कैसी कैसी तरक़्क़ी और तब्दीली होती गयी। यह दौर अिस प्रकार हैं:-

पहला दौर
स. १८६६ अी. तक

यह अिब्तदाअी दौर है। अिसमें पुराना रंग भरा हुआ है। नौसिखुवेपनका ज़माना था। अिसलिये दिल्ली और लखनअूके बड़े बड़े शायरोंकी नक़ल की गयी। कुछ बनावटीपन भी मौजूद है। मगर सफ़ाअी सादगी वग़ैरह गुण भी कम नहीं हैं।

दूसरा दौर
स. १८८४ अी. तक

असलियत और सचाअी कलाममें ज़्यादा पायी जाती है। पुराने ढंगके मज़मून और दक़ियानूसी ख़याल कम होते हैं। बनावटके बदले बेतकल्लुफ़ी और दिलचस्पी आने लगती है।

तीसरा दौर
स. १९०८ अी. तक

यह बड़ी तरक़्क़ीका ज़माना है। अब अिनको ज़बान और क़लाम पर पूरी कुदरत हासिल हो जाती है। हिम्मत और अेतबारके साथ रास्ता तय करते हुअे मालूम पड़ते हैं। न कहीं टटोलते हैं न ठिठकते हैं। तन्ज़ (व्यंग) से भी कलाम अच्छी तरह परिचित होता जाता है। ग़ज़लों का रंग अधिकाधिक अिख़लाक़ी (सांस्कृतिक) होता जाता है और कलाममें रूहानियत और तसव्वुफ़ की चाशनी पड़ने लगती है।

चौथा दौर यह भी तरक्क़ीका ज़माना है। ख़यालोंको ज़ाहिर
स. १९१२ श्री. तक करनेके तरीके अब श्रीजाद हो गये। श्राशिक़ान रंग
तेज़ीसे घटता जाता है और अिख़लाक़ी, रूहानी और फिलसफ़ाना रंगका ज़ोर
बढ़ता जाता है।

पाँचवाँ दौर आशिक़ाना रंग बिलकुल घट गया। रूहानी और
स. १९२१ श्री. तक अिख़लाक़ी रंगके साथ साथ सयासी (राजनैतिक)
रंगने भी ज़ोर पकड़ा। सयासी रंगका ज़ोर सबसे ज़्यादा रहा। च्यूँकि यह
सरकारी पेन्शनर थे, अिसलिये श्रुन्होंने श्रपनी सयासी नज़्मोंको ज़ाहिर नहीं
किया। श्रुम्रके आख़िरी दिन थे, मौतकी काली घटाअें छा रही थीं, रिश्तेदारों
और दोस्तों की मौतें हुअी थीं अिसलिये श्रिस दौरकी शायरीमें अेक दर्द,
श्रेक टीस भरी हुश्री है।

श्रिनके कलामका मक़सद सिर्फ मज़ाक या ज़राफ़त नहीं बल्कि हक़ी-क़तोंकी तालीम था। अिनकी तशबीहें श्रौर मिसालें बिलकुल नयी और मज़ेदार हैं क्योंकि यह अुन्हीं चीजोंका जिक्र करते हैं जिनको हर शख़्स देखता और जानता है। श्रिन्होंने ज़राफ़त पैदा करनेके लिये श्रलग श्रलग ज़बानोंके—मसलन अंग्रेजी हिन्दी वग़ैरहके नये नये, श्रनोखे श्रौर मज़ेदार शब्दोंका श्रिस्तेमाल किया है। ज़राफ़त पैदा करनेका श्रेक श्रौर भी तरीक़ा श्रुन्होंने श्रीजाद किया। वह यह कि मामूली शब्दोंका बिलकुल श्रनोखे ढंगसे प्रयोग करना।

श्रकबरकी ज़राफ़तको महज़ मसख़रापन नहीं समझना चाहिये। अुसकी तहमें निहायत गहरे और तालीम देनेवाले मानी होते हैं। और कोश्री न कोअी हक़ीक़त चाहे वह अिख़लाक़ी हो या तालीमी, सयासी हो या मज़हबी, श्रदबी हो या रूहानी हमेशा छिपी हुश्री रहती है। अिनके तीन कुल्लियात और अेक ख़तोंका संग्रह शाया हुश्रा है।

दौर पहला पूछता है जब कोश्री अुनसे किसे है तुमसे श्रिश्क़।
देखते हैं प्यारसे शरमाके **श्रकबर**की तरफ़॥

दौर दूसरा मौतसे डरते हैं अब पहले य' तालीम न थी।
कुछ नहीं आता था श्रल्लाहसे डरनेके सिवा॥

दौर तीसरा अजलसे वह डरें जीनेको जो अच्छा समझते हैं।
यहाँ हम चार दिनकी ज़िन्दगीको क्या समझते हैं॥

दौर चौथा चल बसें याराने हमदम अुठ गये प्यारे रफ़ीक़।
फ़िक्र कर अुक़बाकी कुछ अकबरकी दुनिया हो चुकी॥

दौर पाँचवाँ मदखूलये गवर्नमेंट अकबर अगर न होता।
अिसको भी आप पाते गांधीकी गोपियोंमें॥

—:*:—

लन्दनको छोड़ लड़के अब हिन्दकी ख़बर ले।
बनती रहेंगी बातें आबाद घर तो कर ले॥
राह अपनी अब बदल दे बस 'पास' करके चल दे।
अपने वतनका रुख़कर औ रुख़सते सफ़र ले॥
अिंगलिशकी करके कापी दुनियाकी राह नापी।
दीनी तरीक़में भी अपने क़दमको धर ले॥
वापस नहीं जो आता क्या मुन्तज़िर है अिसका।
माँ ख़स्ता हाल हो ले, बेचारा बाप मर ले॥
मग़रिबके मुर्शिदोंसे तू पढ़ चुका बहुत कुछ।
पीराने मशरिक़ीसे अब फ़ैज़की नज़र ले॥
मैं भी हूँ अेक सखुनवर आ सुन कलामे अकबर
अिन मोतियोंसे आकर दामनको अपने भर ले॥

चकबस्त

पं० ब्रजनारायण चकबस्तका जन्म फ़ैज़ाबादमें स० १८८२–१९२६ अी. हुआ था और अुन्होंने लखनअूमें तालीम हासिल की थी। वकालत भी यहीं शुरू की। अिन्हें तख़ल्लुस करना पसन्द नहीं था अिसलिये अिन्होंने अपने असली नामसे ही शायरी की। चकबस्त तो अिनके ख़ान्दानका नाम था। पुराने रस्मके मुआफ़िक़ वह किसीके शागिर्द भी न बने। अिन्होंने अेक माहवार रिसाला 'सुबहे अुम्मीद' के नामसे

स० १९१८ औ० में जारी किया था जो अदबी दुनियामें बहुत आ
दर्जेका समझा जाता था।

अिनकी छोटी छोटी नज़्में अक्सर ग़ज़लें ही होती थीं मगर अ
ग़ज़लगोकी हैसियतसे चकबस्त पुराने, अेक ही ढर्रेके, रंगसे बिलकु
अलाहिदा रहना चाहते थे, और अिसीलिए वह नये ज़मानेके अेक मश
लीडर बन गये। अिनकी बड़ी बड़ी नज़्में मुसद्दसकी शक्लमें हुआ कर
थीं। अिनके पाँच अलग अलग हिस्से किये जा सकते हैं:--(१) मर्सि
(२) क़ौमी नज़्में (३) सोशल नज़्में (४) मज़हबी नज़्में (५
नॅचरल नज़्में।

अिनके मर्सिये जो कि मुल्कके जाननिसार लीडरों और आज़ादीके लि
कुर्बान होनेवाले बहादुरों—मसलन् गोपाल कृष्ण गोखले, लोकमान्य तिल
पं० बिशननारायण दर वग़ैरहकी मृत्युपर अिनके क़लमसे निकले
पुरज़ोर, दर्दसे भरे हुअे और दिलपर कभी न मिटनेवाली छाप डालनेवा
हैं। जोश और असरमें यह पूरी तरह डूबे हुअे मालूम होते हैं। क़ौ
और राजनीतिक नज़्मोंमें भी वह सभी गुण हैं जो मर्सियोंमें पाये जाते हैं
गांधीजी, ॲनीबेज़ंट, काँग्रेस वग़ैरहपर अिनकी नज़्में बहुत ही ऊँचे दर्जे
हैं। सोशल नज़्में भी अच्छी हैं। 'फूलमाला' और 'बर्क़ अिसला
यह दो नॅचरल नज़्में बहुत ही आला दर्जेकी हैं। अिनके कलाममें पुरा
ढंगकी तशबीहें और तमसीलें मुतलक़ नहीं मिलतीं।

अिनकी ज़बान निहायत साफ़, शुद्ध, और मीठी है। लफ़्ज़ हमेश
बहुतही मुनासिब, रोज़मर्रा बोलचालके और ज़ोरदार होते हैं। अिन
कलाममें बेहतरीन क़िस्म और आला दर्जेका लखनअूका रंग भरा हुआ है
अिनकी अेक ख़ुसूसियत यह भी है कि यह अपने कलाममें मुनासिब हिन
लफ़्ज़ बेमालूम मिलाकर अुसकी शीरीनी और असरको दोबाला (दूना
कर देते हैं।

अंग्रेजी तालीमयाफ़्ता होनेकी वजहसे पूरबी और पश्चिमी दोनों ढंगों
ख़ूबियोंसे वह आगाह रहते थे अिसलिये अिनकी रायें अदबी मामलोंमें बहु
जँचीतुली, मुन्सफ़ाना, और ग़ैरजानिबदार (पक्षपात रहित) होती थीं

और और अुर्दू शायरोंकी तरह यह कभी ज़ाती हमलोंकी कीचड़में नहीं फँसे। नसरमें भी नज़्मकी तरह अिनका पाया बहुत बलन्द था।

कलामका नमूना देखिये:—

किस वास्ते जुस्तजू करूँ शोहरत की।
अेक दिन खुद ढूँढ़ लेगी शोहरत मुझ को॥

———०० ———

हुअे क़फ़ससे रिहा भी तो किस मुसीबत में।
अँधेरी रात है और आशियाँ नहीं मिलता॥

—*—

वतनपरस्त शहीदोंकी ख़ाक लायेंगे।
हम अपनी आँखका सुर्मा अुसे बनायेंगे॥
ग़रीब माँके लिये दर्द दुख उठायेंगे।
यही पयामे वफ़ा क़ौमको सुनायेंगे॥
तलब फ़िज़ूल है काँटेकी फूलके बदले।
न लें बहिश्त भी हम होमरूलके बदले॥ १॥

हमारे वास्ते ज़ंजीर तौक़ गहना है।
वफ़ाके शौक़में गाँधीने जिसको पहना है॥
समझ लिया कि हमें रंजो दर्द सहना है।
मगर ज़बाँसे कहेंगे वही जो कहना है॥
तलब फ़िज़ूल है काँटेकी फूलके बदले।
न लें बहिश्तभी हम होमरूलके बदले॥ २॥

ज़बाँको बन्द किया है यह ग़ाफ़िलोंको है नाज़।
ज़रा रगोंमें लहूका भी देख लें अंदाज़॥
रहेगा जानके हमराह दिलका सोज़ गुदाज़।
चितासे आयगी मरनेके बाद आवाज़॥
तलब........ ....बदले॥ ३॥

———

पिन्हानेवाले अगर बेड़ियाँ पिन्हायेंगे।
खुशीसे क़ैदके गोशेको हम बसायेंगे॥
जो संतरी दरे ज़िन्दाँके सो भी जायेंगे।
यह राग गाके अुन्हें नींदसे जगायेंगे॥

--(:०:)--

अिक़बाल

स० १८७५ — १९३६ ओ.

डाक्टर सर शेख़ मुहम्मद 'अिक़बाल' सियालकोट (पंजाब) के रहनेवाले थे। वहीं अुन्होंने तालीम हासिल की और लाहौरके गवर्नमेंट कालेजमें प्रोफेसरी करने लगे। यहाँ काम करते वक़्त अिनकी मुलाक़ात अलीगढ़ युनिवर्सिटीके प्रोफ़ेसर मि० आर्नाल्डसे हुई जिनका असर अिक़बालकी जिन्दगी भरमें पाया जाता है। कुछ दिन पढ़ानेका काम करनेके बाद शेख़साहब अूँची तालीम पानेकी ग़रज़से स० १९०५ ओ. में अिंग्लिस्तान रवाना हुअे। वहाँ अेथिक्स (अिख़लाक़ियत) में डिग्री हासिल करके वह जर्मनी चले गये और वहाँ पी० अेच० डी० हुअे। वहाँसे फिर अिंग्लैंड जाकर बॅरिस्टर हो गये और स० १९०८ ओ. में हिन्दुस्तान वापस आकर लाहौरमें प्रॅक्टिस शुरू की। यहीं स० १९२२ ओ. में अुन्होंने 'सर' का खिताब पाया और स० १९३६ ओ. में अिन्तक़ाल फ़रमाया।

अिक़बाल अंग्रेजी, अरबी और फ़ारसीमें ख़ासी दस्तरस (पहुँच) रखते थे। मगर संस्कृत या हिन्दीका अुन्हें बिलकुल ज्ञान न था। अिन्होंने मशरिक़ी व मग़रिबी दोनों फ़िलसफ़ाओंका गहरा मताला किया था; अिसलिये अिनके आला दर्जेके कलाममें फिलसफियतका रंग जमा हुआ है। अैब अिनमें सिर्फ़ यही था कि मुश्किल-पसन्द बहुत थे, बल्कि आख़िरी अुम्रमें तो आसान ज़बान लिखना बेअिज़्ज़ती समझने लगे थे। अिनकी तसनीफ़ें यह हैं:—

(१) 'अिल्म अुल अिक़्तसाद': यह अुर्दू ज़बानकी सबसे पहली किताब है जो अिक्तसाद (अेकानामी) पर लिखी गयी है। शाया स०- १८९६ ओ.

(२) 'फ़िलसफ़ा अे औरान':— पी० अेच० डी० का थेसिस है।

(३) 'अिसरारे ख़ुदी':—फ़ारसी मसनवी है। अिसका अंग्रेजीमें तर्जुमा हुआ है। यह यूरप और अमरीकामें बहुत ही मक़बूल हो गयी थी।

(४) रमूज़ बेख़ुदी— अेक फ़ारसी मसनवी है।

(५) 'पयामे मशरिक़':—फ़ारसीकी ही अेक किताब है।

(६) 'बाँगेदरा'
(७) 'कुल्लियाते अिक़बाल'
(८) 'बाल जबरील'
} अुर्दू कविताओंके संग्रह।

(९) 'मुसाफ़िर' फ़ारसी नज़्मोंका मजमूआ।

अिक़बाल सबसे पहले तब मशहूर हुअे जब लाहौरकी अंजुमने अिस्लाम के सालाना जलसेपर (स० १८९९ अी. में) अुन्होंने अपनी 'नालाअे यतीम' नामकी निहायत दर्दसे भरी हुअी और पुरअसर नज़्म पढ़ी। अिसके बाद हरसाल अिस जलसेमें वह अपने जौहर दिखलाया करते थे। अिक़बालने अैसा ज़बर्दस्त हाफ़िज़ा पाया था कि अक्सर पूरी की पूरी नज़्में बग़ैर काग़ज़ देखे पढ़ सकते थे।

अिनकी शायरीके तीन दौर साफ़ तौरपर नज़र आते हैं:

पहला दौर

स० १८९९ से १९०५ अी. तक यानी अिनके विलायत जाने तकका जमाना जिसे हम तैयारीका ज़माना कह सकते हैं। अिस ज़मानेका कलाम ज़्यादातर ग़ज़लोंकी सूरतमें है। लफ्ज़ोंमें और बंदिशमें कुछ ढीलापन मालूम होता है। अिस वक़्तकी ज़बान ज़्यादातर आसान और सुलझी हुअी है। अिक़बालको क़ौमी शाअर का जो ओहदा सारे हिन्दोस्तानकी तरफ़से बहाल किया गया वह अिसी ज़मानेकी शायरीका नतीजा है। अिस अहदमें यह सच्चे अर्थमें क़ौमी शायर थे। अुनकी 'हिमालय' 'तरानाअे हिन्दी' 'नया शिवाला' वग़ैरह नज़्में अिसी ज़मानेकी यादगारें हैं जो हरेक हिन्दुस्तानीके लिये फ़ख्र करनेकी चीज़ें हैं।

दूसरा दौर

स. १९०५—   अिस दौरमें शायरने यूरपमें क़याम किया जहाँ मि.
१९०८ अी. तक   आर्नाल्ड साहबकी सोहबतका अुनपर काफ़ी गहरा असर पड़ा। अुनके दिलसे क़ौमियतका रंग फ़ीका पड़ने लगा और फ़िरक़ा-वाराना ख़यालोंने ज़ोर पकड़ा। अिस अरसेमें अिन्हें फ़ारसीका भी अच्छा ख़ासा शौक़ हो गया जिसका असर ज़बानपर बहुत बुरा हुआ। यानी साफ़ सादा और आसान ज़बान मुश्किल और बनावटी होती गयी। सारांश तीसरे दौरकी अिब्तदाअी झलक इस दौरमें दिखाअी देती है।

तीसरा दौर

१९०८ से   अिनके विलायतसे हिन्दोस्तान वापस आ जानेपर यह
१९३६ अी. तक   दौर शुरू हुआ। अिसमें अिनकी शायरीकी मश्क़ अपने कमाल दर्जेको पहुँच गयी। अिस दौरको क़ौमी लिहाज़से बदक़िस्मतीका दौर समझना बजा होगा। क्यों कि अिस ज़मानेमें दूसरे मुस्लिम लीडरोंकी तरह यह भी पूरे मिल्ली (फ़िरक़ापरस्त) और पॅनअिस्लामिज़मके पक्के हामी बन गये। फिर भी अिनकी अिब्तदाअी शायरीको देखते हुअे हम यह नहीं कह सकते कि अिक़बालने कुछ भी नहीं किया। कितना अच्छा होता अगर अिक़बालके दिल और कलाममें क़ौमकी वह मुहब्बत और अिज़्ज़त क़ायम रहती जो शुरू ज़मानेमें थी।

अुर्दूके आम शायरोंकी तरह यह मायूस शायर नहीं थे। अिनका कलाम फ़िलसफ़ाना हक़ीक़तोंसे मामूर (भरा हुआ) है। अुनकी अेक ख़ासियत यह भी थी कि वह पश्चिमी तहज़ीबके दुश्मन थे। अुनके कलाममें अुम्मीद और अुत्साहके फूल जाबजा खिले हुअे होते हैं। छोटे-छोटे लफ़्ज़ोंमें मानीके दरिया भर देनेकी अिनकी ख़ूबी तारीफ़ करनेके क़ाबिल है। अुर्दू शायरीमें शायद यही पहले शायर हैं जिनकी शुहरत हिन्दोस्तानके बाहर दूर दूरके मुल्कोंमें भी फैली हुई है। कलामका नमूना देखिये :—

——-*:*——

वो चीज़ नाम है जिसका जहाँमें आज़ादी ।
सुनी ज़रूर है देखी कहीं नहीं मैंने ॥
खुदा तो मिलता है अिन्सान नहीं मिलता ।
यह चीज़ वह है कि देखी कहीं कहीं मैंने ॥

—×—

रुलाता है तेरा नज़्ज़ारा अै हिन्दोस्ताँ मुझको ।
कि अिबरतख़ेज है तेरा फ़िसाना सब फ़िसानों में ॥
दिया रोना मुझे अैसा कि सब कुछ दे दिया गोया ।
लिखा किल्के अज़लने मुझको तेरे नौहाख़्वानोंमें ॥
वतनकी फ़िक्र कर नादाँ ! मुसीबत आने वाली है ।
तेरी बर्बादियोंके मशिवरे हैं आसमानोंमें ।
न समझोगे तो मिट जाओगे अै हिन्दोस्ताँवालो ।
तुम्हारी दास्ताँ तक भी न होगी दास्तानोंमें ॥

—•—

सूनी पड़ी हुअी है मुद्दतसे दिलकी बस्ती ।
आ अिक नया शिवाला अिस देशमें बना दें ॥
हर सुबह अुठके गायें मन्तर वो मीठे मीठे ।
सारे पुजारियोंको मै पीतकी पिलादें ॥

क़ैदमें आया तो हासिल मुझको आज़ादी हुअी ।
दिलके लुट जानेसे मेरे घरकी आबादी हुअी ॥

—×—

ढूँढ़ता फिरता हूँ मैं अै अिक़बाल ! अपने आपको ।
आप ही गोया मुसाफिर आप ही मंज़िल हूँ ॥

—×—

नसर [गद्य]

अध्याय तेरहवाँ

अुर्दूकी नसर (गद्य)

नसरकी अिब्तदा किसी भी ज़बानका अितिहास लिखते वक़्त यह तय करना बड़ा मुश्किल हो जाता है कि अुसके गद्यका प्रारंभ कब, कैसे और किससे हुआ; क्योंकि नज़्म जिस तरह लोगोंके दिलों और ज़बानोंपर बैठ जाती हैं अुस तरह नसर नहीं बैठती; और चूँकि नस्रकी तारीख़का ठीक ठीक पता नहीं लगता है अिसलिये आलिमोंने अिस रायपर मंजूरीकी मुहर लगा दी है कि अदबका प्रारम्भ कवितासे हुआ करता है। लेकिन यह बिलकुल साफ़ है कि नज़्म बनानेकी ज़रूरत महसूस होनेसे पहले या अुसमें चलने फिरनेकी शक्ति आ जानेसे पहले कोअी अिन्सान बिना बात किये चुपचाप ज़िन्दगी नहीं बसर कर सकता। क़िस्से कहानियाँ कहने और ख़तपत्र लिखनेकी ज़रूरत आदमीके साथ ही जन्म लेती है। क्या हम यह कह सकते हैं कि क़ुली क़ुतुबशाह या अमीर ख़ुसरोसे पहले लोग क़िस्से कहानियाँ नहीं सुनते-सुनाते थे या ख़तपत्र नहीं लिखते थे?

दूसरी अेक महत्त्वकी बात अिस बारेमें याद रखनेकी यह है कि आदमी सच्ची कविता तभी करता है जब अुसके भाव बेक़ाबू होकर अुमड़ अुठते हैं और अुन्हें ज़ाहिर करनेके वास्ते अुसके पास जरूरी लफ़्ज हो जाते हैं। लेकिन नस्र तो हवा और पानीके जितनी ही जरूरी बात है।

जो हो। अुर्दूके गद्यके जो पुरानेसे पुराने नमूने अिस वक़्त तक मिल सके हैं अुनसे पता चलता है कि अुर्दू नस्रकी तारीख अीसाकी चौदहवीं सदीसे शुरू होती है। हो सकता है कि अिससे पहले भी अिस दिशामें कोअी कोशिश की गअी हो, लेकिन आज अुस जमानेके साहित्यका कोअी निशान नहीं मिलता। जो नमूने आज तक मिले हैं वह भी अदबी हैसियतसे किसी ख़ास

महत्त्वके नहीं हैं। यह अेक ताज्जुबकी बात है कि पद्यकी तरह गद्यकी शुरुआत भी दक्षिणमें ही हुअी। गुजरात और दक्षिणकेज फ़कीरों और धर्मप्रचारकों ने अपने दीन (पंथ) को फैलानेकी ग़रजसे बहुतसी अरबी और फारसी किताबोंके अुर्दूमें तर्जुमे किये। सबसे पुरानी किताबें शेख अैनुद्दीन गंजुलअिल्म (मृत्यु—सन् १३३२ अीसवीके क़रीब) की हैं। अिसके बाद बीजापूरके शाह मीर नजी शम्सुल अुश्शाक जो अेक पहुँचे हुअे फ़कीर थे—की छोटी छोटी किताबें पायी जाती हैं।

शुमाली हिन्द—दिल्ली-की सबसे पुरानी नसरका नमूना 'फ़ज़ली' की 'दह मर्जलिस' है जो कि फ़ारसीकी अेक किताबका तर्जुमा है। यह स० १७३२ अी. में शाया हुअी। अिसमें बहुत-सी कमियाँ हैं। जुमले पेचीदा, आडंबरपूर्ण और अनुप्रासयुक्त हैं। मानी भी साफ़ साफ़ नहीं मालूम होते। अिसी ज़मानेमें कविवर सौदाने अपने कुल्लियातके शुरूमें जो दीबाचा लिखा है वह भी ज़िक्र करने लायक़ है। आजकलके व्याकरणकी पाबन्दी अिसमें नहीं पायी जाती। नज़्मकी तरह क़ाफ़ियेदार लफ्ज़ जुमलोंके आख़िरमें रख दिये हैं। अुपमा और अुत्प्रेक्षाओंसे मज़मून ममलू (भरा हुआ) है। मतलब कि, नज़्म और नसरमें बहुत ही कम फ़र्क़ पाया जाता है।

अिसके बाद अुर्दू दीबाचों और तजुर्मोंका रिवाज-सा चल पड़ा। स० १७९८ अी. में 'चहार दरवेश' का तर्जुमा मीर मुहम्मद अता हुसेन खाँ 'तहसीन' ने 'नौ तर्ज़े मुरस्सअ' के नामसे किया। अिसकी अिबारत निहायत रंगीं और अरबी व फ़ारसी शब्दोंसे ठसाठस भरी हुअी है। मगर यह अितनी पेचीदा हो गयी है कि आसानीसे समझमें नहीं आती। मीर अम्मन देहलवी, ने अिसी 'चहार दरवेश' का तर्जुमा 'बाग़ व बहार' के नामसे किया जिसकी भाषा साफ़, सादा और बामुहावरा है, अिसलिये यह तर्जुमा बहुत मक़बूल हुआ।

जब अंग्रेजी सल्तनत यहाँ पूरी तरह जम गयी तो दूसरी जबानोंकी तरह अुर्दूकी तरफ़ भी काफ़ी तवज्जुह की गयी। अंग्रेज शासक यह अच्छी तरह जानते थे कि जब तक हाकिम लोग अपने महकूमों (शासितों) की जबान न सीख लें, तब तक अुनके दिलोंपर वह काबू नहीं पा सकते। हिन्दुस्तानको पूरी तरह गुलाम बनानेके लिये यह जरूरी था कि अुसपर अंग्रेजी तहज़ीबका

रोब अच्छी तरह जमा लिया जाय। अिसके वास्ते अंग्रेजी ज़बानके शिकंजेमें हिन्दुस्तानी दिलों और दिमाग़ोंको फँसा देना लाजिमी था। मगर अिस काम के लिये यह बेहद ज़रूरी था कि सबसे पहले खुद अँग्रेज लोग देसी भाषाओंसे परिचित हो जायँ। ख़ास अिसी ख़यालसे स० १८०० अी. में कलकत्तेमें फ़ोर्ट विल्यम कॉलेज क़ायम किया गया। शायद अंग्रेजोंने असा भी सोचा होगा कि, जब कि हम यहाँके शासक बन गये हैं तो यहाँकी रिआयाकी भलाअी, तालीम, और तरक्कीकी जिम्मेदारी भी हमीं पर है। अिसलिये देसी जबानोंके साथ साथ मुल्कमें अंग्रेजी तालीम भी शुरू की गयी। अिस बातका ज़िक्र हम आगे चलकर करेंगे कि अंग्रेजी शिक्षाका अुर्दू जबानके रंग-रूपपर क्या असर हुआ।

असलमें देखा जाय तो फ़ोर्ट विल्यम कालेजने ही अुर्दू नसर और नये ज़मानेके अुर्दू अदबकी नींव डाली। अुर्दू भाषाकी बाक़ायदा पढ़ाअी यहीं शुरू हो गयी और धीरे धीरे वह आलीशान अिमारत तैयार हो गयी जिसे देखकर देखनेवाला हैरतमें आ जाता है कि अितने कम वक़्तमें अितनी बड़ी और अितनी खूबसूरत अिमारत कैसे खड़ी हो गयी! ताज्जुब की बात है कि अिसके बनानेमें हिन्दू और मुसलमान दोनोंने अेक दिलसे और अेक विचारसे काम किया। जो हिन्दू-मुस्लिम फ़िसादसारे देश और क़ौमको ख़ाकमें मिलानेकी कोशिश कर रहा है वह अिस कालकी अुर्दूमें नहीं देखा जाता। अिस मंदिरके कारीगरों और पुजारियोंमें सिर्फ़ हिन्दू और मुस्लिम ही नहीं बल्कि यूरपके अीसाअी भी शामिल हैं। मसलन डॉ० जॉन गिलक्राअिस्ट, कैप्टन रोबक; डॉ० हंटर, कैप्टन टेलर वग़ैरह।

फ़ोर्ट विल्यम कॉलेजके लेखकों और अनुवादकोंमेंसे नीचे लिखे नाम ख़ास तौरपर मशहूर हैं:-डॉ० जॉन गिलक्राअिस्ट; लल्लूलालजी, अम्मन, सदल मिश्र, अफ़सोस, हुसेनी; लुत्फ़, मदारीलाल, वेणीनारायण 'जहाँ', हैदरी, जवान, मौ० अिमामबख़्श सहबाअी, मुन्शी करीमुद्दीन, मुन्शी निहालचन्द, शाह अब्दुल क़ादिर; सितारे हिंद, अिकरामअली ख़ाँ, वग़ैरह।

अिनमेंसे बहुतसे लोग अैसे हैं जिन्होंने हिन्दी और अुर्दू दोनों ज़बानों-की ख़िदमत की। कुछ तो अैसे हैं जिन्होंने सिर्फ दरसी किताबों तक ही जाना पसंद किया। बाक़ी अैसे हैं जिनका काम अरबी, फारसी, संस्कृत, अंग्रेज़ी वग़ैरह दूसरी देसी और विदेशी ज़बानोंसे तर्जुमे करना था। अिस ज़मानेमें मौलिक किताबें बहुत कम निकलीं। लेकिन यहाँसे जो सोता अेक बार निकला वह थोड़े ही अर्सेमें सारे अुत्तरी भारतमें फैल गया और अुसमें से नये नये ढंगकी किताबें आये दिन निकलने लगीं।

X X X

अध्याय चौदहवाँ

फ़ोट विल्यम कालेज

डॉ० जॉन गिलक्राअिस्ट
स० १७५९ से १८४७ अी. तक

डॉक्टर साहब स्कॉटलन्डके बाशिन्दे (निवासी) थे। अिनका जन्म अेडिंबरोमें स. १७५९ अीं. में हुआ था। स. १७८३ अी. में अीस्ट अिंडिया कम्पनीके डॉक्टरकी हैसियतसे यह हिन्दुस्तानमें आये। यहाँ आकर अुन्होंने देखा कि यहाँके युरोपियन अफ़सर देसी ज़बानोंकी बनिस्बत फ़ारसी और संस्कृतकी ओर ज़्यादा आकर्षित हैं। अुन्हें यह बात कुछ खटकी। कुछ दिनों बाद अुनका यह ख़याल पक्का हो गया कि अगर अंग्रेजोंको यहाँ अपनी जड़ अच्छी तरह जमानी है तो अुन्हें देसी भाषाओंकी तरफ़ ज़्यादा ध्यान देना चाहिये। अुनके अिस ख़यालने ही 'फोर्ट विल्यम कालेज' को जन्म दिया।

स. १८०४ अी. में पेन्शन लेकर यह विलायत चले गये और वहाँ ओरिअेंटल अिन्स्टिटयूटमें अुर्दू ज़बानके प्रोफ़ेसरकी हैसियतसे काम करते रहे।

डॉक्टर साहबने अुर्दू और हिंदी दोनों ज़बानोंपर अितने अेहसान किये हैं कि जबतक यह ज़बानें दुनियामें रहेंगी, अुन्हें याद करती रहेंगी। ख़ासकर अुर्दूकी तालीम और तरक़्क़ीके लिए जॉनसाहबने जो कोशिशें कीं अुन्हें देखकर कहना पड़ता है कि 'पिदरे नस्रे अुर्दू' (अुर्दू गद्यके पिता) कहलानेके वे ही सचमुच अधिकारी हैं। अुन्हींकी अनथक कोशिशोंसे अुर्दू मुकम्मिल हो कर 'सरकारी ज़बान' का दर्जा हासिल कर सकी।

अिनके बारेमें यहाँतक मशहूर है कि यह हिंदुस्तानी कपड़े पहन कर अुन मुक़ामोंमें जहाँ बहुत सही और बामुहावरा अुर्दू बोली जाती थी, बराबर घूमा करते थे मगर किसीको शुबहा तक न होता कि जनाबकी

ज़बान अुर्दू नहीं है। संस्कृत, फ़ारसी और दूसरी कअी देसी भाषाओंसे भी यह अच्छी तरह वाक़िफ़ थे।

अिन्होंने सैकड़ों किताबें यहाँके आलिमोंसे तैयार करवायीं जिनसे अुर्दू अदबका ख़ज़ाना मालामाल होने लगा। खुद अिन्होंने भी बहुतसी किताबें ज़बानके मुताल्लिक़ लिखी हैं जिनसे नौसिखुअे तालिब अिल्म (विद्यार्थी) बहुत कुछ फ़ायदा, अब भी अुठा सकते हैं। अिनकी मशहूर रचनाअें यह हैं:—अंग्रेजी-हिन्दुस्तानी डिक्शनरी, ओरिअेंटल लिंग्विस्टिक; हिन्दुस्तानी ग्रामर, हिन्दुस्तानी फायलालॉजी वग़ैरह।

मीर अम्मन

देहलवी
मृत्यु स. १८१० अी. के क़रीब

मीर अम्मन दिल्लीके रहने वाले थे लेकिन जाटोंके हमलेके वक़्त अिन्हें दिल्ली छोड़कर पटना और वहाँसे कलकत्ते भाग जाना पड़ा। वहाँ डॉक्टर जान गिलक्राअिस्टसे जान पहचान हो गयी और यह मुंशीके ओहदे पर मुकर्रर किये गये। यहाँ रहकर अिन्होंने दो किताबें लिखीं। अेक 'बाग़ोबहार' जो अमीर खुसरोकी मशहूर 'चहार दरवेश' कहानीका तर्जुमा है और दूसरी 'गंजीन अे खूबी'। 'बाग़ोबहार' यहाँ तक मक़बूल हुअी कि अंग्रेजी अफसरोंके अुर्दूके अिम्तहानोंमें दरसी किताबके तौरपर वह दाख़िल हो गयी और कअी बरस तक चलती रही।

मीर साहबकी जबान बहुत साफ़, सुलझी हुअी और आला दर्जेकी है। अिनके बारेमें सर सैयद कहते थे कि 'कवितामें जो स्थान मीर 'तक़ी' को हासिल है वही स्थान गद्यमें मीर अम्मनको है।'

अफसोस

स. १७३५—
१८०६ अी.

मीर शेरअली 'अफ़सोस' दिल्लीके रहने वाले थे; मगर बचपनमें ही अिनको अपने बापके साथ पटना जाना पड़ा। वहाँसे घूमते घामते यह लखनअू पहुँचे। वहाँ वे अपना कलाम मीर हैदरअली 'हैरान' को दिखाते थे। कर्नल स्कॉट साहबके ज़रिये फ़ोर्ट विलियम कालेजमें अेक अूँचे ओहदेपर मुक़र्रर हुअे। यहाँ रहकर अिन्होंने 'गुलिस्ताँ सादी' का 'बाग़े अुर्दू' के नामसे अुर्दूमें तर्जुमा किया। 'आराअिशे

महफ़िल' नामकी अेक दूसरी किताब भी अिन्होंने लिखी है जिसमें हिन्दुस्तान का भूगोल और अितिहास थोड़ेमें बयान किया है। अिनका अेक दीवान भी है जो आदर और अिज़्ज़तकी निगाहोंसे देखा जाता है।

लल्लूलालजी

(ज. स. १८२५ अी.) यह गुजराती ब्राह्मण थे मगर बहुत दिनोंसे अुत्तर भारतमें जा बसे थे। 'लतायफ़ हिन्दी' नामकी अेक किताब अिन्होंने हिन्दी भाषामें लिखी है। हिन्दी-अुर्दूकी पाठ्यपुस्तकें बनानेमें अिन्होंने बड़ा हिस्सा लिया था। शाकुन्तल, सिंहासन बत्तीसी, बेताल-पच्चीसी वग़ैरह किताबोंके तर्जुमोंमें अिनकी बहुत मदद हुअी थी

× × ÷

अिस ज़मानेमें पादरियोंका बड़ा दौर-दौरा था। वह हिन्दू-मुसलमानोंकी मज़हबी किताबों पर अैतराज़ करते थे, और हिन्दू-मुसलमान अुन्हें जवाब देते थे। अिस तरह भी बहुत-सी किताबें लिखी गयीं। कुरान शरीफ़के तर्जुमे भी आसान अुर्दूमें करनेकी कोशिशें हुअीं। पादरियोंको अपनी बातें आम लोगोंमें फैलानी थीं अिसलिये अुन्होंने आमफ़हम और आसान अुर्दूमें रिसाले (पॅम्फ्लेट) छपवाकर बाँटे। अिन रिसालोंसे हालाँकि अदबी ज़बानमें कोअी ख़ास तरक़्क़ी नहीं हुअी, मगर फिर भी अितना तो कहा जा सकता है कि जो मंदिर आगे चलकर खड़ा हुआ अुसकी बुनियादको मज़बूत बनानेमें पादरियोंका भी कुछ न कुछ हाथ ज़रूर था। अिनकी देखा-देखी और भी बहुतसे पंथोंके प्रचारकोंने आसान ज़बानमें पर्चे निकालने शुरू किये जिससे साहित्यिक लोगोंके दिमाग़में यह बात जम गयी कि अगर हमें अपनी बातें जनताको समझानी हैं तो अैसी भाषाका अिस्तेमाल करना चाहिये जो ज़्यादा से ज़्यादा लोगोंकी समझमें आ जाय।

अध्याय पन्द्रहवाँ

दिल्ली और लखनऊके नस्सार

पिछले बाब (अध्याय) में हमने जिन साहित्यिकोंका जिक्र किया है वह सब फोर्ट विल्यम कॉलेजसे ताल्लुक़ रखते थे। अिसके मानी यह हरगिज़ नहीं कि अुन दिनों सिर्फ़ वे ही लोग जो ज़्यादातर मुतरज्जम (अनुवादक) ही थे अदबी दुनियाके बलन्द सितारे थे। नहीं ! च्यूँकि दिल्लीकी तबाहीके बाद शायरीका मरकिज़ लखनअू बन चुका था, अिसलिये जब नस्रका ज़माना शुरू हो गया तो लखनअू भी कॉलेजसे पीछे न रहा।

वहबी मज़हबको हिन्दुस्तानमें फैलानेकी कोशिश करनेवाले मौ. अिस्माअिल (स. १७९६-१८३१ अी.) ने 'तक्विय अुल अीमान' नामकी किताब और बहुतसे मज़हबी पर्चे अुर्दूमें लिखकर छपवाये थे। शाह वलीअुल्ला साहबके बेटे शाह रफ़ीअुद्दीन (स. १७४९-१८१८ अी.) और शाह अबदुल क़ादिर (स. १७५३-१८१५ अी.) ने कुरान शरीफ़के दो उम्दा तर्जुमे अुर्दूमें तैयार किये जो आज भी अिज़्ज़तकी निगाहोंसे देखे जाते हैं। खलिलअुल्ला खाँ 'आशिक़' फ़ैज़ाबादके रहनेवाले थे। अुन्होंने बहुत सी किताबें लिखीं जिनमें 'किस्साअे अमीर हमज़ा' 'वाक़याते अकबरी' 'अिन्तख़ाबे सुलतानिया' वग़ैरह ज़िक्र करनेके क़ाबिल हैं।

मिर्ज़ा जान तैश, सआदत यार ख़ाँ 'रंगीन', फ़क़ीर मुहम्मद ख़ाँ 'गोया,' गुलाम अिमाम शहीद, प्रोफ़ेसर रामचन्द्र, अब्दुल करीम वग़ैरह लोग भी अपनी अपनी किताबोंके लिये मशहूर हैं। अिसी वक़्तकी सैयद अिन्शा अल्ला ख़ाँकी तस्नीफ़ 'दरियाअे लताफ़त' में अुर्दू खतों और बोलचालकी ज़बानोंके जो नमूने दिये गये हैं वह गौर करने लायक़ हैं। लेकिन अिस ज़मानेमें 'सुरूर' और 'ग़ालिब' दो अैसे ज़बर्दस्त मुसन्निफ़ (लेखक) गुज़रे हैं कि अुनके तवील (विस्तृत) हालात यहाँ देना मुनासिब होगा।

सुरूर

स. १७८९-१८६७ ई. तक

मिर्ज़ा रजबअली बेग 'सुरूर' लखनऊके सबसे पुराने और मशहूर मुसन्निफ़ और शायर हैं। स. १८२५ ई. में यह कानपुर चले गये और वहीं इन्होंने अपनी मशहूर किताब 'फ़िसानाए अजायब' लिखी। यह बहुत ही मक़बूल हो गयी। इसका क़िस्सा मामूली हुस्न और इश्क़का फ़िसाना है जिसके मज़मून और वाक़यातमें कोई मौलिकता नहीं दिखाई देती। उसकी ज़बान भी उसी ज़मानेकी अनुप्रासपूर्ण फ़ारसीसे लबालब भरी हुई और बिलकुल बनावटी-सी है। इसमें सिर्फ़ तिलिस्म, जादू, देवों (राक्षसों) से लड़ाइयाँ, जादूगरोंके मुक़ाबले, वग़ैरह पुराने ढंगकी चीज़ें पायी जाती हैं और यही वजह है कि नौजवान तबीयतोंको इसमें बहुत दिलचस्पी आती थी।

जिस तरह उर्दू नज़्मकी इब्तदा मर्सियों, ग़ज़लों और मसनवियोंसे हुई उसी तरह उर्दू नस्रकी बुनियाद फ़र्ज़ी (काल्पनिक) क़िस्सों, अफ़सानों और तर्जुमोंपर रखी गयी। इसी लिहाज़से सुरूरकी इस किताबका महत्व है। कॅरेक्टर-निगारी इसमें बहुत ही कम है मगर लखनऊकी जीती-जागती तस्वीर खींचकर लेखकने अमिट नाम हासिल किया। फ़ारसी लफ्ज़ों और तुकबन्दीने इन्हें इस तरह खींच लिया है कि अक्सर जगह पढ़नेवाला लफ्ज़ोंके जालमें फँस जाता है और मानी भूल जाता है।

'फ़िसाना ए अजायब' के अलावा ौर भी बहुत सी किताबें इन्होंने लिखी हैं जिनमें 'शररे इश्क़' 'शगूफ़ा ए मुहब्बत' 'शबिस्ताने सुरूर' ज़्यादा मशहूर हैं। 'इंशा ए सुरूर' नाम का सुरूरके ख़तोंका संग्रह भी काफ़ी मशहूर व मक़बूल है।

ग़ालिब

ग़ालिबका पूरा ज़िक्र नज़्मके हिस्सेमें आ चुका है। ग़ालिब जिस तरह बेनज़ीर शायर हैं उसी तरह वह फ़ारसी और उर्दू दोनों ज़बानोंके बेमिसाल नस्सार भी हैं। उनकी उर्दू नस्रकी तसनीफ़ें ज़्यादातर ख़तों और रुक़्क़ोंके संग्रहोंके रूपमें हैं जिनके नाम 'उर्दू ए मुअल्ला'

और 'अुर्दे हिन्दी' हैं। अुनके खतोंकी जबानकी यह खासियत है कि वह बिलकुल बेतकल्लुफ़ है। अिननी साफ़ और रोजमर्रा जबान किसी और जगह शायद ही देखनेको मिलेगी। अुनके लिखनेमें बिलकुल बातें करनेका मजा आता है। लेकिन· हाँ! ग़ालिबने जो दीबाचे और आलोचनाअें लिखी हैं अुनकी जबान बिलकुल पुरतकल्लुफ़ और पेचीदा है जो अुस वक़्त पूरी तरह रायज थी। मीर लालकी 'सिराजअुल मुअर्रिफ़त' को अुन्होंने जो दीबाचा लिखा है अुससे हमारे कथनकी पुष्टि होगी।

मिर्जा ग़ालिबके अेक खतका हिस्सा जो अुन्होंने मिर्ज़ा यूसफ़को लिखा था :–

"यूसफ मिर्ज़ा! क्योंकर तुझको लिखूँ कि तेरा बाप मर गया? और अगर लिखूँ तो फिर आगे क्या लिखूँ? कि अब क्या करो? मगर सब्र! यह अेक शैवाअे फरसूदा अबनाअे रोजगारका है। ताज़ियत यूँ ही किया करते हैं और यही कहा करते हैं कि सब्र करो। हाय! अेकका कलेजा कट गया है और लोग अुसे कहते हैं कि तू न तड़प। भला क्योंकर न तड़पेगा? सलाह अिसमें नहीं बतायी जाती, दुआको दख़ल नहीं। दवाका लगाव नहीं। पहले बेटा मरा, फिर बाप मरा। मुझसे अगर कोअी पूछे कि बेसरोपा किसको कहते हैं तो मैं कह दूँगा, यूसफ मिर्ज़ा को।

मुज़फ़्फ़र मिर्ज़ाको दुआ पहुँचे। तुम्हारा खत जवाब-तलब न था। तुम्हारे चचाका आग़ाज अच्छा है। खुदा करे अंजाम अिसी आग़ाजके मुताबिक़ हो। अुनका मुक़द्दमा देखकर तुम्हारी फूफीका और तुम्हारा सरअंजाम देखा जायगा कि क्या होता है। होगा क्या? अगर जायदाद मिली भी तो क़र्जदार दाम दाम ले लेंगे। राजिक़ हकीक़ी पेन्शन दिलवा दे कि रोटीका काम चले। जनाब मीर कुरबानअली साहबको मेरा सलामे नियाज और मीर काज़िम अलीको दुआ।

ग़ालिब

मरकूमा शम्बा २७, शवाल, व ८ मअी सालहाल

* * *

यह जमाना अुर्दूकी नस्रकी तरक्क़ीका पहला दौर है । अिस दौरमें छापेखाने वजूदमें आये जिससे अख़बार, रिसाले और किताबें बड़ी तादादमें छपकर निकलने लगीं । स. १८३२ अी. में फ़ारसीके बजाय अुर्दू सरकारी ज़बान करार पायी जिससे अुर्दूकी तालीम और तरक्कीमें बहुत बड़ा फायदा पहुँचा । जब तालीम शुरू हुअी तो दरसी किताबोंकी ज़रूरत ज्यादा महसूस होने लगी । नतीजा यह हुआ कि कअी जगहोंसे बच्चोंकी किताबें तैयार हो कर निकलने लगीं जिनकी जबान आसान और साफ होती थी । मग़रिबी तमद्दुन (सभ्यता) और अंग्रेजी तालीमके असरने जबानको आसान बनाकर और भी चमका दिया । अब लफ्जोंके बजाय मजमूनपर ज़्यादा जोर दिया जाने लगा ।

अब दो दौर बाक़ी हैं जिन्हें हम 'अलीगढ़ कॉलेजका दौर' और 'दिल्ली कॉलेजका दौर' कह सकते हैं । अिसके अलावा और भी बहुतसे शायर और नासिर (गद्यलेखक) हैं जो अिन दोनों मरकिज़ोंसे दूर रहे हैं । बहुतसे अदीब अैसे हैं जो हैं तो दिल्ली कॉलेजसे ताल्लुक़ रखनेवाले, मगर जिनपर सर सैयद अहमदख़ाँकी ज़बर्दस्त छाप दिखाअी देती है ।

अब ज़बानकी बहुत-सी नयी नयी तर्जें हो गयीं । मसलन् बाज़ अरबी फ़ारसी पढ़े-लिखे मुसन्निफ़ोंकी ज़बानमें अुन अुन ज़बानोंके ज़्यादा लफ्ज़ आने लगे । अुनकी ज़बान बहुत ही मुश्किल और पेचीदा बन गयी । सर सैयद जैसे सुधार चाहनेवालोंकी ज़बान बहुत कुछ आसान और निहायत सीधी-सादी होती थी; मगर वह बादमें आनेवाले लोगोंको रूखी-फ़ीकी-सी मालूम हुअी । दूसरा अेक फ़िरक़ा पैदा हो गया जिसने अपने लेखनमें हिन्दी और संस्कृतके जटिल शब्द ठूँस ठूँस कर भरना शुरू किये (आज भी पंजाब और देहलीके हिन्दू सभावादी या आर्यसमाजी लेखकोंकी अुर्दू अिसी ढंगकी है ।) अेक तर्ज़ वह भी निकली जो टागोरकी गीतांजलिकी तर्ज़ कही जा सकती है । लेकिन अुसमें सिर्फ़ लफ़्ज़ ही लफ्ज़ हुआ करते हैं; मानीका कहीं पता ही नहीं चलता । अब यह तर्ज़ कुछ धीमी-सी पड़ गयी है ।

——×——

अध्याय सोलहवाँ
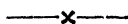
सर सैयद और अलीगढ़ कॉलेज

सर सैयद अहमदख़ाँ

स. १८१७–१८६८ अी.

सर साहब दिल्लीके रहनेवाले थे। मगर सरकारी नौकरीके सिलसिलेमें अिन्हें बहुत जगह घूमना पड़ा। आख़िरी अुम्रमें यह अलीगढ़ जाकर रहे, जहाँ बादमें मुस्लिम युनिवर्सिटी क़ायम हुअी। अिनकी सबसे पहली किताब 'आसारअुस्सनादीद' है जिसमें दिल्लीकी पुरानी अिमारतोंके बारेमें निहायत आसान और दिलावेज़ ज़बानमें लिखा गया है। यह अितनी मशहूर हो गयी कि अंग्रेज़ी और फ्रेंच ज़बानोंमें भी इसके तर्जुमे हो गये। अिसके बाद अिनका तबादला दिल्लीसे बिजनौर हो गया। यहाँ रहकर अिन्होंने 'तारीख़े बिजनौर' 'असबाबे बग़ावते हिन्द' वग़ैरह बहुत-सी किताबें लिखीं जो बहुत ही मशहूर हैं। सन् १८६२ अी. में अिन्होंने ग़ाज़ीपुरमें 'सायन्टिफ़िक सोसायटी' की बुनियाद डाली। अिस सोसायटीने बहुत-सी अंग्रेज़ी किताबोंके तर्जुमे निकाले जिससे अुस ज़मानेमें वह बहुत मक़बूल हो गयी। सन् १८६४ अी. में वह अलीगढ़ आये और वह सोसायटी यहीं आ गयी। सन् १८६६ अी. में अिन्होंने अेक अंजुमन क़ायम की जिसका नाम 'ब्रिटिश अिंडियन असोसिअेशन' था। अिसी ज़मानेमें अेक माहवार रिसाला 'अलीगढ़ अिन्स्टिट्यूट गज़ट' के नामसे निकला जिसमें सर साहबके मज़मून कसरतसे रहते थे। सन् १८६९ अी. में ख़ाँ साहब विलायत गये जहाँ उन्हें सी. एस. आअि. का ख़िताब मिला। ऑक्सफ़ोर्ड और केंब्रीजकी युनिवर्सिटियोंको देखकर अिनपर बहुत गहरा असर हुआ। सन् १८७० अी. में हिन्दुस्तान वापस आकर अिन्होंने अपना मशहूर अख़बार 'तहज़ीब अुल अिख़लाक़' (मुस्लिम सोशल रिफार्मर) शुरू किया। अिस अख़बारके पहले सात सालोंमें सैयद

साहबने कुल अेक सौ बारह मज़मून लिखे जिनकी ज़बान बहुत साफ़ और ज़ोरदार है। अिनके अध्ययनसे हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके विचारोंमें अेक बहुत भारी क्रान्ति दिखाअी देने लगी।

'तफ़सील अुल कुरान' के नामसे अिन्होंसे कुराने शरीफ़का सात जिल्दोंमें बिलकुल नये ढंगसे तर्जुमा किया। इसके बीच बीचमें बाअिबलके हवाले भी दिये हैं। जो मुसलमान लोग अुनके रिफ़ार्मी ख़यालोंसे बिगड़ गये थे वह अिस तर्जुमेकी वजहसे अुनके सख़्त दुश्मन बन गये। वह सोचते थे कि सैयद साहब मजहबके ख़िलाफ़ बग़ावत कर रहे हैं। मगर खुद सैयद साहबपर अिस मुख़ालिफ़तका कुछ भी असर न हुआ। अपने कामसे वह किसी तरह टससे मस न हुअे। सन् १८७५ अी. में अलीगढ़ कॉलेजकी स्थापना हुअी और सन् १८७८ अी. में मुलाज़िमतसे छुट्टी पाकर सर सैयद अपना सारा वक्त तालीमी और ख़याली बातोंमें गुज़ारने लगे।

सर सैयदकी शैली निहायत साफ और सादी थी। व्याकरणकी पाबन्दी-की वह तनिक भी परवाह नहीं करते थे। फिर भी अुर्दू नस्रके वह अैसे क़ाबिल अुस्ताद माने गये जिनके पेश्तर अुनका कोअी हमपल्ला (जोड़का) न था।

सर सैयदके दोस्तोंमें बहुत ही आला दर्जेके शायर और नस्सार थे। मसलन् नवाब मुहसिन अुल मुल्क; नवाब वक़ार अुल मुल्क, मौ. चिराग़-अली; ख़्वाजा अलताफ़ हुसैन 'हाली', मौ. नज़ीर अहमद, मौ. शिबली नामानी वग़ैरह। मुसलमानोंमें नयी रोशनी फैलानेका जो काम सर साहबने अपने सर पर लिया था, अुसमें अुनके यह दोस्त और साथी अगर हाथ न बँटाते, तो वह शायद ही अुतनी जल्दी पूरा हो सकता, जितने थोड़े अर्सेमें अुन्होंने अुसे कर दिखाया।

बाज़ लोग पहले पहले तो अिनके ख़िलाफ़ थे मगर जब अुन्होने अिनकी लगनका परिचय पाया तो वह अिनके दिली दोस्त बन गये, मुसलमानोंके लिये वह सचमुच अेक अिन्क़लाबका ज़माना था। अुस वक्तके चंद नस्सारोंका ज़िक्र हम आगे करेंगे। अिन सबका अलीगढ़ कालेजसे कुछ न कुछ तालुक़ ज़रूर रहा है।

अिनकी नस्रका नमूना देखिये:—

देख, नादान बेबस बच्चा गहवारेमें सोता है। अुसकी मुसीबतजुदा माँ अपने धंदेमें लगी हुअी है और अुस गहवारेकी डोरी भी हिलाती जाती है। हाथ काममें और दिल बच्चेमें है; औरज़बानसे अुसको यूँ लोरी देती है सो रह, मेरे बच्चे सो रह ! अै अपने बापकी मूरत और मेरे दिलकी ठंढ़क सो रह ! अै मेरे दिलकी कोंपल सो रह ! बढ़ और फलफूल ! तुझपर कभी ख़िजां न आने पावे। तेरी टहनीमें कोअी ख़ार कभी न फूटे। कोअी कठिन घड़ी तुझ पर न आवे। कोअी मुसीबत जो तेरे माँ बापने भुगती तू न देखे। सो रह मेरे बच्चे सो रह ! मेरी आँखोंके नूर और मेरे दिलके सुरूर मेरे बच्चे सो रह ! तेरा मुखड़ा चाँदसे भी ज़्यादा रोशन होगा; तेरी ख़िसलत तेरे बापसे भी अच्छी होगी। तेरी शुहरत तेरी लियाक़त, तेरी मुहब्बत जो तू हमसे करेगा, आख़िरकार हमारे दिलको तसल्ली देगी। तेरी हँसी हमारे अंधेरे घरका अुजाला होगी। तेरी प्यारी प्यारी बातें हमारे ग़मको दूर करेगी। तेरी आवाज़ हमारे लिये खुशआयन्द रागिनियाँ होंगी। सो रह मेरे बच्चे, सो रह। अै हमारी अुम्मीदोंके पौदे सो रह ! बोलो जब अिस दुनियाँमें हम तुमसे जुदा हो जावेंगे तो तुम क्या करोगे ? तुम हमारी बेजान लाशके पास खड़े होगे। तुम पूछोगे और हम कुछ न बोलेंगे। तुम रोओगे और हम कुछ रहम न करेंगे। अै मेरे प्यारेरोने वाले ! तुम हमारे ढेरपर आकर हमारी रूहको खुश करोगे ! आह हम न होंगे और तुम हमारी यादगारीमें आँसू बहाओगे। अपनी माँका मुहब्बत भरा चेहरा, अपने बापकी नूरानी सूरत याद करोगे। आह ! हमको यही रंज है कि अुस वक़्त हमारी मोहबत याद कर कर तुम रंजीदा होगे। सो रह; मेरे बच्चे सो रह। सो रह; मेरे बाले सो रह !

[अुम्मीद से]

हाली

ख़्वाजा अल्ताफ़ हुसैन 'हाली का ज़िक्र नज़्मके हिस्सेमें आ चुका है। यहाँ सिर्फ अुनकी नस्रकी तसनीफ़ोंके बारेमें लिखना है।

हाली साहब ग़ालिबके शगिर्द और सर सैयदके साथी थे। चुनांचे दोनोंकी

ज़बानोंका असर अुनपर पूरी तरह पड़ा हुआ है। 'तिरयाक़ अे मसमूम' और 'मजलिस अुन्निसा' यह दो मज़हबी किताबें अिन्होंने स.१८६८अी. और स. १८७४ अी. में लिखी। अिसके बाद अिनकी तीन सबसे मशहूर किताबें शाया हुअीं अेक है 'हयाते जावेद'. जिसमें सर सैयदकी ज़िन्दगी और कामोंके हाल तफ़सीलवार बयान किये हैं। यह अिनकी सबसे बड़ी नस्रकी किताब है। दूसरी किताब 'यादगारे ग़ालिब' है जिसमें अुन्होंने अपने अुस्ताद ग़ालिबके बारेमें बहुत ही अदबके साथ लिखा है। तीसरी किताब फ़ारसके मशहूर शायर सादी की जीवनी है जिसका नाम है 'हयाते सादी'। तीनों किताबोंकी ज़बान बहुत ही साफ़ सुथरी और सुलझी हुअी है। अपने दीवानके लिये अिन्होंने जो मुक़-दमा (आमुख) लिखा था, अुसका नाम शेर व शायरी है जिसमें सिर्फ अुर्दू ही नहीं बल्कि अंग्रेजी और फ्रेंच जबानोंकी शायरीपर भी अिन्होंने अपने फाज़िलाना (विद्वत्तापूर्ण) ख़याल बयान किये हैं। अिसकी ज़बान कुछ बनावटी-सी मालूम होती है।

हालीकी तर्ज़ हालाँकि कोअी ख़ास तर्ज़ नहीं है मगर वह अेक बहुत बड़े नस्सार हैं। अिनकी अिबारत निहायत साफ़, सादा और ज़ोरदार होती है।

हाली साहबकी जबानका नमूना मुलाहिज़ा फरमाअिये।

"अब फ़र्ज करो अिस मुल्कके बाशिन्दोंका मेल जोल किसी अैसे मुल्क-वालोंसे हुआ जिनके तमाम काम अिल्मी अुसूलपर मबनी हैं। अुन्होंने ज़िरायत, तिजारत, सनअत व दस्तकारी और तमाम जंगी और मुल्की मुहमातमें अिल्म ही को अपना रहबर बनाया है। क्या मामार, क्या बढ़अी, क्या लोहार, क्या दरजी, क्या क़फ़शदोज ग़र्ज़कि तमाम पेशावर महज़ अिल्मकी हिदा-यतसे अपने काम सर अंजाम करते हैं। अुनके मेलजोल, लेनदेनने अिस मुल्क के ग़रीब बाशिन्दोंको सख्त नुक़सान पहुँचाया। अुनकी तिजारतने अिनके अख़राजाते ज़िन्दगी हदसे ज़्यादा बढ़ा दिये। अुनकी सनअतसे अिनकी सनअत माद हो गयी; अुनकी दस्तकारीने अिनकी दस्तकारीको अंड कर दिया; मगर अेक मुद्दत तक अिनको अिस बातकी ख़बर न हुअी कि हमारे पेशावर क्यों बेकार हो गये? हमारी कमाअियोंमें बरकत क्यों नहीं रही? हमारे अख़राजात

रोज़बरोज़ क्यों बढ़ते जाते हैं ? हमारी आमदनी हमारे अख़राजातको क्यों मक्त फ़ी नहीं होती ?

(दुनियाकी कल अिल्मसे चलती है या अमल से ?)

हाली साहबकी ज़बानका और अेक नमूना देखिये:—

अै ज़बान ! जिन्होंने तेरा कहना माना और जो तेरा हुक्म बजा लाये अुन्होंने सख़्त अिलज़ाम अुठाये और बहुत पछताये ! किसीने अुन्हें फ़रेबी मक्कार कहा, किसीने गुस्ताख़ और मुंह फट अिनका नाम रखा। किसीने रियाकार ठहराया, किसीने सखुनसाज़। किसीने बद-अहद बताया और किसीने गुम्माज़-ग़ैबत और बहुतान मकर और अिफ़्तरा-तान और तशनीअ गाली और दुश्नाम-फक्कड़ और ज़ला-जगत और फब्ती-ग़र्ज़ दुनिया भरके अैब अुनमें निकले और वह सबके सब सज़ावार ठहरे।

अै ज़बान ! याद रख; हम तेरा कहा न मानेंगे। और तेरे क़ाबूमें हरगिज़ न आयेंगे। हम तेरी डोर ढीली न छोड़ेंगे और तुझे मुतलक़ अल अनान न बनायेंगे। हम जानपर खेलेंगे पर तुझसे झूठ न बुलवायेंगे, हम सरके बदले नाक न कटवायेंगे।

(ज़बान-गोया)

मौ. नज़ीर अहमद.

स. १८३१-१९१२ अी.

शम्सुल अुल्मा ख़ाँ बहादुर मौलाना नज़ीर अहमद ज़िला बिजनौरमें पैदा हुअे थे। हाली, आज़ाद, मौ॰ ज़काअुल्ला वग़ैरह मशहूर शायर व नस्सार दिल्ली कॉलेजमें अिनके साथी थे। यह बहुत रोज़ तक गवर्मेंटकी मुलाज़िमतमें रहे और बादमें कुछ सालके लिये हैदराबाद (दक्षिण) जा कर काफ़ी नाम और पैसा कमा लाये। अिन्होंने अपनी आख़िरी अुम्र अलीगढ़ कालेजकी ख़िदमतमें गुज़ार दी। बीसवीं सदीके शुरूमें जो तीन ज़बर्दस्त नॉवेलनिगार हो गये अुनमें मौलाना साहबका दर्जा निहायत अूँचा है। 'बनातुन्नाश' और 'मिरातुल अरूज़' अिन दो अुपन्यासोंका तो अेक ज़मानेमें घर घर में प्रचार हुआ था। 'मुहसनात' और 'अय्यामा' में अिन्होंने शादी और निकाहके

बारेमें अपने नयें ढंगके त्रिचार लिखे हैं। अिनकी रचनाअें विपुल हैं जिनमें ज़्यादातर क़िस्से कहानियाँ ही हैं। 'अिंडियन पिनल कोड' 'टैक्स अैक्ट' 'अिँडियन अेविडन्स अैक्ट' वग़ैरह किताबोंके तर्जुमे भी अिन्होंने किये हैं जो बहुत मक़बूल हुअे।

मौलाना साहब निहायत सादा मिज़ाज और हँसोड़ शख़्स थे। अुनकी ज़बान बहुत साफ़, सादा, आसान और घरेलू है जिससे अुनकी किताबें औरतोंमें बहुत बड़ी तादादमें पढ़ी जाती थीं। अुनका हँसानेवाला रंग अुनकी नसरका आला जौहर था।

मौलाना साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

अब हमको कलीम और नअीमा दोनों भाअी बहनोंका हाल बयान करना चाहिये कि बापके घरसे निकलकर अुनपर क्या बीती। सो च्यूँकि कलीम पहले निकला, पहले अुसीका हाल बयान करते हैं। कअी बार अुसको बापने बुलवाया; यहाँतक कि हारकर रुक़्क़ा लिखा। माँने बहुतेरा समझाया। भाअीने बहुत कुछ कहा सुना लेकिन वह रूबराह न हुआ और जब देखा कि फ़हमीदा सालहाके अुतरवानेमें मसरूफ़ है आँख बचा बे पूछे बे कहे घरसे अिस तरह निकल खड़ा हुआ कि गोया अुसको कुछ ताल्लूक़ ही न था। शायद अुसके ज़हनमें भी यह बात अुस वक़्त न गुज़री होगी कि वह अुम्र भरके वास्ते घरसे जा रहा है, और अज़ीज़ व अक़ारब जिनसे वह अुसे सरसरी तौरपर जुदा होता है, जीते जी अुनको न देख सकेगा।

(कलीमका अपने बापके घर से निकल जाना)

शिबली

सन् १८५७–१९१४

मौलाना शिबली नामानी अपने जमानेके बहुत ही मशहूर और क़ाबिल बुजुर्गोंमेंसे थे। इन्होंने नज़्म और नसरके अलग अलग हिस्सोंमें अितना अुम्दा काम कर दिखाया है कि अुन्हें 'अदीबोंके बादशाह' कहा जा सकता है। वह शायर, मुवर्रिख़ (अितिहासज्ञ), तालीमके माहिर सब कुछ थे। मगर सभी हिस्सोंमें रिसाअी होनेके बावजूद वह ज़्यादातर अदब, तारीख़ और जुस्तजू (रिसर्च) अिन तीन बातोंके लिये ही ख़ास तौरपर मशहूर हैं।

मौलाना साहब आज़मगढ़ ज़िलेमें पैदा हुअे थे; मगर अिल्मकी तलाश-में रामपुर, लाहौर, सहरानपुर वग़ैरह कअी स्थानोंमें गये। अिन्हें किताबोंका शौक़ बेहद था। और हाफ़िज़ा (स्मरण-शक्ति) भी ज़बर्दस्त पाया था। वकालत, सरकारी मुलाज़िमत वग़ैरह बहुतसे काम कर चुकनेके बाद वह अलीगढ़ युनिवर्सिटीमें प्रोफ़ेसर हुअे। यहाँ सर सैयद, मौ. हाली वग़ैरह आलिमोंकी सुहबत और सर साहबके पुस्तकालयसे अिन्होंने काफ़ी फ़ायदा अुठाया। यहीं रहकर अिनमें यह ख़याल पैदा हो गया कि अिस्लामकी प्राचीन शान व शौक़तके सुनहरे कारनामोंको कलमबन्द किया जाय। सर सैयदने भी अिस मुबारक कामपर अुनका अुत्साह बढ़ाया। अिसी अर्सेमें अिन्होंने 'सुबहे अुम्मीद' मसनवी लिखी जो बहुत ही मक़बूल हुअी। सन् १८१२ अी. में शिबली साहबने रूम, शाम और मिस्रका सफ़र किया। वहाँसे आनेके बाद 'सफ़रनामा अे मिस्र रूम व शाम' नामकी मशहूर किताब अिन्होंने लिखी। अिसी सफ़रमें अुन्होंने अपनी 'अलफ़ारूक' नाम किताबकी तैयारी की। स. १८९७ अी. में सर सैयदके अिन्तक़ालपर दुखी होकर यह आज़मगढ़ वापस चले गये। अिसके बाद कश्मीर, हैदराबाद (दक्षिण) जैसे दूर दूरके मुल्कोंके सफ़र करके आख़िरी अुम्रमें आज़मगढ़ आ गये। 'नदवत अुल अुलमा' और 'दारुल मुसन्निफ़ीन' अिन दो संस्थाओंके पीछे अिन्होंने अपनी सारी जायदाद ख़र्च कर दी। अिन दो अंजुमनोंने अरेबियाकी विद्याओं और अिस्लामी तहज़ीबको दुनियाके सामने सही तौरपर पेश किया। मौ. सैयद सुलेमान 'नद्वी', मौ. हमीदुद्दीन, मौ. अब्दुल बारी, मौ. अब्दुल माजद वग़ैरह बहुत पुरजोश और अूँचे लेखक 'दारुल मुसन्निफ़ीन' ने उर्दूकी अदबी दुनियाको दिये हैं।

मौलाना साहब सफ़ाअी, सादगी और कलामकी ख़ूबसूरतीको बहुत पसन्द करते थे। नख़रा और बनावटीपन अिनमें बहुत कम पाया जाता है। कारोबारी नस्रका बेमिसाल नमूना अिन्होंने पेश किया। अिनकी रचनाअें अितनी ज़्यादा हैं कि अुनके सिर्फ़ नाम लिखनेमें ही पूरा पन्ना ख़त्म हो जायगा। फिर भी सबसे ज़्यादा मशहूर किताबोंके नाम यह हैं:—

'सिरात अुन नामान' 'अल गज़्ज़ाली' 'सिरात-अुन्नबी' 'सवानह अे मौलाना रूम' 'मुआज़िना अे 'अनीस व दबीर' 'शेर अुल अज़म' वग़ैरह।

शिबली साहबकी जबानका नमूना देखिये:—

यहाँकी अिमारतें हिन्दुस्तानकी अिमारतोंसे बिलकुल जुदा वज़ाकी हैं। और मकानात अमूमन् सेह-मंजिला चौ-मंजिला हैं। सहन मुतलक़ नहीं होता। अिमारतें तमाम लकड़ीकी हैं। बड़े बड़े अुमरा और पाशाओंके महल भी लकड़ीके ही हैं। और यही सबब है कि अक्सर यहाँ आग लगती है। कोअी महीना बल्कि हफ़्ता ख़ाली नहीं जाता कि दो चार घर आगसे जलकर तबाह न हों। और कभी कभी तो मुहल्लेके मुहल्ले जलकर ख़ाक-स्याह हो जाते हैं। आग बुझानेके लिये सल्तनतकी तरफ़से निहायत माकूल अेहतमाम हैं। कअी सौ आदमी ख़ास अिस काम पर मुकर्रर हैं। अेक निहायत बलन्द मिनारा बना हुआ है जिसपर चंद मुलाजिम हर वक़्त मौजूद रहते हैं कि जिस वक़्त कहीं आग लगती देखें फ़ौरन खबर करें। अिस क़िस्मके और भी छोटे छोटे मिनारे जा बजा बने हुअे हैं। जिस वक़्त कहीं आग लगती है, फ़ौरन तोपें सर होती हैं; और शहरके हर हिस्सेसे आग बुझानेवाले मुलाज़िम तमाम आलातके साथ मौक़े पर पहुँच जाते हैं। अुनको हुक्म है कि बेतहाशा दौड़ते जायँ। यहाँ तक कि अगर कोअी राह चलता अुनकी झपटमें आकर पिस जाये तो कुछ अिलज़ाम नहीं। मैने लोगोंसे दरयाफ्त किया कि पत्थरकी अिमारतें क्यों नहीं बनतीं? मालूम हुआ कि सर्दीके मौसममें सख़्त तकलीफ़ होती है और तन्दुरुस्तीको नुक़सान पहुँचता है।

(कुस्तुन्तुनिया)

नवाब मुहसिन अुल मुल्क

(स. १८३७-१९०७ अी.)

मुहसिन अुल मुल्क नवाब सैयद मेहदी अली अिटावेमें पैदा हुअे थे। अेक लम्बे अरसे तक गवर्मेंटकी नौकरी करके यह हैदराबाद (द०) चले गये जहाँ अिनको काफ़ी नाम और पैसा हासिल हुआ। हैदराबाद रियासतमें अुर्दू को सरकारी ज़बान

के स्थान पर बिठानेमें अिन्हींकी अनथक कोशिशें कारण हुअीं । अिन्होंने अिंग्लैंडका सफ़र भी किया था । बादमें यह अलीगढ़ चले गये जहाँ अिन्होंने अपनी शेष आयु कालेजके अिन्तज़ाम, सरपरस्ती, और तालीमी खि़दमतोंमें ख़र्च की । अिनकी दो किताबें 'क़ानूने माल' और 'कानूने फ़ौजदारी' अुस ज़मानेमें बहुत मशहूर थीं । अलीगढ़ जानेके बाद 'तहज़ीब अुल अिख़लाक़' में वह बराबर लिखा करते थे । अुनके लेखोंके कअी संग्रह शाया हो गये हैं । अिनकी ज़बानमें फ़ारसी लफ्ज़ कसरतसे पाये जाते हैं । फिर भी वह बहुत जोरदार है ।

अध्याय सत्रहवाँ

मौलाना आज़ाद और दिल्ली कॉलेज

जिस तरह पिछले अध्यायमें हमने देखा कि सर सैयद और अुनके साथियोंने मिलकर अुर्दू ज़बानकी कितनी अच्छी सेवा की। अुसी तरह अिस अध्यायमें हम यह देखेंगे कि दिल्ली कॉलेजसे सम्बन्ध रखनेवाले लेखकों और कवियोंने अुर्दूकी किस किस तरह सेवा की। पिछले अध्यायमें सर साहब केन्द्र थे जिनके आसपास दूसरे लोग जमा हो गये थे; मगर यहाँ तो सभी अलग अलग हैं जिनमें आज़ाद बहुत ही मशहूर हैं।

आज़ाद

मृत्यु—सन् १९१० अी.

शम्सुल अुल्मा मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' पिछली सदीकी तीसरी दहाअीमें दिल्लीमें पैदा हुअे थे। यह अेक ज़बर्दस्त शायर भी थे। अिनकी शायरीका ज़िक्र नज़्मके हिस्सेमें आ चुका है। दिल्ली कॉलेजके शुरू शुरूके विद्यार्थियोंमें यह बहुत मशहूर थे। ज़िन्दगीके प्रारम्भमें अिन्होंने तालीमके महकमेमें मुलाज़िमत अख़्तियार की और बादमें लाहौरके गवर्मेंट कॉलेजमें अरबीके प्रोफ़ेसर मुक़र्रर हुअे।

जिस तरह अुर्दू नज़्ममें अेक ज़बर्दस्त अिन्क़िलाब पैदा करनेमें अिन्होंने हाथ बँटाया अिसी तरह भी ये बहुत अूँचा दर्जा रखते थे। 'अंजुमने पंजाब' और 'अुर्दू सभा' के क़ायम करनेमें अिन्होंने बहुत बड़ा हिस्सा लिया। अिन संस्थाओंने पंजाबमें अुर्दूकी तालीम और तरक़्क़ी के लिये बहुत कारगर (सफल) कोशिश की। यह दो मर्तबा अीरान गये थे। अिन्हें फ़ारसीसे ख़ास लगाव था जिससे अुनकी वह तसनीफ़ें जो फ़ारसी ज़बानके मुताल्लिक़ हैं, मसलन् 'सख़ुनदाने फ़ारिस' और 'निगारिस्ताने फ़ारिस' बहुत ही दिलचस्प और जानकारीसे भरी हुअी है।

सन् १८८६ श्री. से श्रिनमें कुछ पागलपनके चिह्न दिखाश्री देने लगे थे जिससे अुम्रके आखिरी हिस्सेमें वह किसी अदबी कामके लायक़ न रहे। श्रिस पागलपनका कारण अुनकी प्यारी बेटीकी बेवक़्त मौत बताया जाता है।

आज़ादकी लेखन-शैली तो बिलकुल बेजोड़ है। श्रिसकी ख़ास सिफ़त यह है कि अरबी, फ़ारसीके ग़ैरमानूस (अपरिचित) शब्द और ढंग अुसमें बहुत कम मिलते हैं। हिन्दी भाषाकी सादगी और बेतकल्लुफ़ी, अंग्रेज़ीकी साफ़गोश्री और फ़ारसीका हुस्न और खूबसूरती यह तीनों बातें अुसमें मिली-जुली होती हैं। श्रिसी तर्ज़पर श्रिनकी सारी तसनीफ़ें हैं। ख़ासकर 'आबे हयात' की ज़बान तो बेहद प्यारी है। श्रिस किताबमें अुर्दू शायरोंके दिलचस्प हाल बयान किये गये हैं। हालाँकि तारीख़के लिहाज़से अुसमे कश्री ख़ामियाँ हैं मगर अुसकी ज़बान तो पढ़नेवालोंपर जादूका असर करती है। श्रिनकी बनाश्री हुश्री फ़ारसी और अुर्दूकी रीडरें, अुर्दूका क़ायदा, क़वायदे अुर्दू वग़ैरह स्कूली किताबें भी निहायत दिलचस्प और अूँचे दर्जेकी हैं। 'क़ससि हिन्द' और 'नैरंग ख़याल' में श्रिनके लिखे हुश्रे और अनुवादित क़िस्से मुरत्तिब (संग्रहीत) किये गये हैं। दिल्लीमें पैदा होने और तालीम पानेके अलावा श्रिनका दिल्लीसे कोश्री ख़ास ताल्लुक़ न रहा; मगर श्रिन्हें देहलीसे बहुत ही प्रेम था। सर सैयदके असर से यह दूर थे। आज़ाद साहबकी ज़बानके जौहर मुलाहिज़ा फ़रमाश्रियेः—

"श्रीरान श्रेक क़ुदरती बहिश्त है। वहाँ जिन जिन चीजोंकी बहुतात है वही अुसकी (श्रिन्शापरदाज़ीका सामान है। गुल, बुलबुल, सब्ज़ा, शबनम) बरफ़, श्रोले, मुर्ग़ज़ार, आबेरवाँ, गुलशन, चमन, दरख़्त, जवानाने चमन, मुर्ग़ाने चमन वग़ैरह वग़ैरह। श्रिन तरकीबोंमें हज़ारों नाजुक और लतीफ़ ख़यालात अदा करते हैं। गुलाबके फूलोंमें जो ज़र्दी है अुसे ज़रेगुल कहते हैं। गुल अपना ख़ज़ाना लुटाता और हँसाता है मगर गुन्चा मुट्ठी बंद करके अपनी ज़रदारीपर खुश होता है और मुसकिराता है। शबनम बेसबातीपर रोती है। जिस तरह बुलबुल गुलकी आशिक़ है, क़मरी सरोकी शैदा है, अुसका गेरुवा लिबास है, नग़माश्रे लालाज़ार हैं, मगर सब्ज़ा

बेगाना है ।

ज़मज़मोंकी कसरतसे असका नाम 'हज़ार दास्ताँ' 'हज़ार आवाज़' रखा है। बीसियों सिफ़तें खुशनुमा और खुशआयन्द निकाली हैं। मुर्ग़ शबख़्वाँ, खुश आहंग, आतिश नवा वग़ैरह वग़ैरह अक अक तरक़ीबसे कअी कअी मज़मून शायराना जुदागाना पैदा किये हैं। कोह, सहरा, मुर्ग़ज़ार, चश्मे, आबेरवाँ की कुदरतके अजायबख़ाने हैं। अिनसे हज़ार दो हज़ार ख़यालात ज़बानमें परवाज़ करते फिरते हैं।

(अीरानकी बहारे नौरोज़)

मौलाना ज़काअुल्ला

स. १८३२-१९१० अी.

शम्सुल अुलमा मौलाना ज़काअुल्ला खाँ दिल्ली के पुराने कॉलेजके मशहूर शागिर्दोंमें थे। आज़ाद और नज़ीर अहमद के यह साथी थे और तीनों शम्सुल अुल्मा थे। यह एक अर्से तक आगरा कॉलेजमें फ़ारसी और अुर्दूके प्रोफ़ेसर रहे। कुछ दिन तक डिप्टी कलक्टर रहकर बादमें यह अलाहाबादके म्युअर कॉलेजमें अरबी और फ़ारसी ज़बानोंके प्रोफेसर हो गये। अिनकी तसनीफ़ें बहुत हैं जिनकी तादाद डेढ़सौसे कम न होगी। लेकिन सबकी सब स्कूली और कॉलेजकी किताबें हैं, अुनमें अदबी हैसियत बहुत कम है। 'तारीख़े हिन्दोस्ताँ' तेरह जिल्दोंमें, 'मुहमाते अज़ीम' 'अैने केसरी' 'फ़रहंगे फिरंग' वग़ैरह किताबें स्कूलों और कालेजोंमें बहुत मक़बूल थीं। अिनकी शैली निहायत साफ़, सुलझी हुअी और बनावटीपनसे बिलकुल पाक है। अुस वक़्तके मशहूर रिसालों में यह बाक़ायदा मज़मून लिखनेका काम भी करते थे।

* * *

दिल्ली कालेजने नये अिल्मों और फ़नोंकी तरक़्क़ी और रिवाजमें काफ़ी मदद दी है। पहले पहल तो अिसमें अुर्दू और अरबी-फ़ारसीकी पुराने ढंग पर पढ़ाअी होती थी। मगर स. १८२७ अी. में अंग्रेजीका दर्जा खुल गया। अुस वक़्तका यह रिवाज़ था, मामूली अंग्रेजी पढ़े लिखे आदमीको

बड़ी बड़ी तनख़्वाहकी नौकरियाँ मिलती थीं अिसलिये बहुतसे लड़के अंग्रेज़ी पढ़ने लगे।

अंग्रेज़ी तालीमने अुर्दू साहित्य पर क़ाफ़ी असर डाला। अब तक अुर्दू लिखने और पढ़नेवालोंका दायरा बहुत ही महदूद था सो अब वसीअ हो गया। अिसके साथ ही ज़बान साफ़, सादा और आसान होती गयी जिसका सबब ज़्यादातर स्कूली किताबें ही थीं। अिस बातका ख़याल अुर्दू अदीबोंके दिलों और दिमागोंमें पैदा होने लगा कि अिश्क, दर्द और तिलस्मको छोड़ दुनियामें दूसरी भी बहुतसी चीजें मौजूद हैं। लेकिन साथ साथ कुछ बुराअियाँ भी आ गयीं। मसलन् हिन्दुस्तानियोंको अदना और अंग्रेजोंको आला समझकर अुनकी हरेक बातकी हँसी अुड़ाना, और यूरोपियनोंकी हर बातको अच्छा समझकर अुसकी वग़ैर समझे बूझे नकल करना वग़ैरह बातें अदबमें आने लगीं। ग़ैर मानूस अंग्रेज़ी लफ़्ज़ भी ज़बानमें लापरवाही से बेहद घुसेड़े गये जिनको निकालना अब मुश्किल हो गया है।

प्रो. रामचन्द्र

दिल्ली कालेजमें यह विज्ञानके बहुत मशहूर प्रोफेसर थे। स. १८५२ अी. में यह अीसाअी बन गये थे जिससे ग़दरके ज़मानेमें अिनके जानके लाले पड़े थे; मगर अपने दोस्तों और शागिर्दोंकी मददसे यह बच गये। बहुत ही अक़्लमन्द और होशियार आदमी थे। मौ. नज़ीर अहमद और अुनके साथी प्रो.-रामचन्द्रके अज़ीज़ शागिर्दोंमें थे। विज्ञान पर अिन्होंने जो किताबें लिखी हैं वह बहुत ही विद्वत्तापूर्ण हैं। 'किताबे अजायबे रोज़गार' और 'तज किरात अुल कामिलीन' अिनकी दो मशहूर नस्रकी किताबें हैं। प्रोफ़ेसर साहबने दिल्ली कालेजमें अेक अदबी अंजुमन खोली थी जहाँसे काफी मुफ़ीद किताबें शाया हुअीं।

मौलाना गुलाम अिमाम शहीद

शहीद साहब दिल्ली कालेजके प्रोफ़ेसर थे। अिस्लामी मज़हबसे ताल्लुक़ रखनेवाली बहुत सी किताबें अिन्होंने लिखीं जिसमें 'अिन्शा अे बहारे बेख़िज़ाँ' और 'मजमूआ अे मौलूद शरीफ़' मशहूर हैं। यह बहुत रोशन-ख़याल और

सुसंस्कृत आदमी थे। अिन्हें 'मद्दाहे नबी' और 'आशिक़े रसूल' कहा जाता है।

मौ. अिमामबख़्श सहबाअी, मुंशी गुलाम ग़ौस 'बेखबर', डा. सय्यद बिलग्रामी, सै. हुसेन बिलग्रामी, मौ. अजीज मिर्जा, मौ. अब्दुल हक़, अब्दुल मजीद, लाला श्रीराम वग़ैर मशहूर लेखक इसी जमानेके हैं। अिनमेंसे कुछ लोगोंका जिक्र तफ़सीलके साथ आगे किया जायगा।

अध्याय अठारहवाँ

दूसरे लोगोंकी खिदमतें

अलीगढ़ कॉलेज और दिल्ली कॉलेज के दायरेमें न आनेवाले कुछ साहबोंका जिक्र अिस अध्यायमें किया जायगा।

मौलाना सैयद अहमद

देहलवी

स. १८४६-१९२० अी.

मौलना साहब अपनी मशहूर लुग़त 'फ़रहंगे आसफ़िया' के मुसन्निफ़ होने की वजहसे अुर्दूदाँ पब्लिक में अेक ख़ास शुहरत रखते हैं। अिस किताबको पूरा करनेमें चौदह साल लगे थे। निजाम हैदराबादसे अिस लुग़तके वास्ते पाँच हजार रुपये अिनाम और पचास रुपये माहवार पेन्शन मिला था। अिसीसे अिसका नाम 'फ़रहंगे आसफ़िया' है। डॉ. फ़ैलेनकी अिंग्लिश-अुर्दू डिक्शनरी सैयद साहबने ही सात सालमें तैयार की थी। अिन कामोंके अलावा अिन्होंने और भी बहुतसी किताबें लिखीं जिनमें 'तकमील अुल कलाम' 'तहक़ीक़ अुल कलाम' 'रसखान' 'रीतिबखान' 'लुग़ातअुन्निसा' वग़ैरह मशहूर हैं। अिनकी जबानमें कोअी ख़ास बात नहीं पायी जाती। अिनका नाम अिनकी जबर्दस्त मेहनतके कारण ही हुआ है।

सैयद साहबकी जबानका नमूना देखियेः—

"अब रोज़बरोज़ अिसकी तराश ख़राश होने और योमन फ़योमन रौनक़ बढ़ने लगी। फ़ारसी के मुहावरात हिन्दी में तर्जुमा हुअे। अरबी-फ़ारसी अिस्मों और मसदरोंकी अलामत लगा कर अुर्दू बना लिया। अमीर खुसरोने तो यहाँ तक अिजतहाद किया कि चलनेसे चलीदन बनाकर फ़ारसीमें रायज कर दिया। हत्ताकि अब तर्जुमों और तसानीफ़का

दफ़्तर भी खुल गया। किसीने कुरानेशरीफ़ का तर्जुमा किया किसीने शहादत नामा लिखा। किसीने चहारदरवेश सँभाला कोअी नज़्मपर झुक पड़ा।

(अुर्दू जबानकी पैदाअिश और तरक़्क़ी)

अमीर अहमद 'मीनाअी'

स. १८२८-१९०० अी.

अेक गद्यलेखककी हैसियतसे यह अुतने मशहूर नहीं है जितने कि अेक शायर-की हैसियत से हैं। अिनका तफ़सीलवार जिक्र नज़्मके हिस्सेमें आ चुका है। अिनके खत काफी मशहूर हैं हालाँकि वह ग़ालिबकी अपेक्षा तादाद और दर्जेमें बहुत कम हैं। रामपुरके चारसौ दस शायरोंके बारे में अिन्होंने अेक किताब लिखी है जिसका नाम 'अिन्तखाबे यादगार' है। अिनके अलावा और भी दो किताबें अिनकी लिखी हुअी हैं। अिनके नाम हैं 'हिदायत अुस् सुलतान' और 'रशाद अुस् सुलतान'। यह दोनों किताबें नवाब वाजिदअली शाहके हुक्मसे लिखी गयी थीं और अिनकी वजहसे अमीर साहब अपने जमानेमें बहुत मशहूर हो गये थे।

अमीर मीनाअीकी जबानका नमूना देखिये:--

मार्च स. १८८२ अी.

फ़क़ीरनवाज़ कहूँ या अमीरनवाज़ कहूँ? अमीरनवाज़ कहनेमें आपकी तरक़्क़ी मरातिब तो है मगर अपनी निस्बत अमारतकी अिजाफ़ते खुदनुमाअी है और वह भी झूठी खुदनुमाअी; अिस लिये कि बराय नाम अमीर हूँ और दर हक़ीक़त फ़क़ीर हूँ।

लिखना क्या था क़लम बहककर किधर निकल गयी। मुआफ़ कीजिये और मतालबका जवाब लीजिये कि अनायतनामा आया; मिन्नत पज़ीर फ़रमाया। ... ...

अल्ला आपकी अुम्र में अैसी बरकत दे कि मेरे अिस मतलेके मसदाक़ हो जाय:—

बाक़ी न कोअी दिलमें अिलाही हवस रहे।
बारह बरसके सिनमें वह लाखों बरस रहे॥

अुर्दू फ़ारसी कभी कभी ग़जल मुझको भी भेज दिया कीजिये कि देख कर खुश हो जाया करूँ। और ख़त लिखनेमें बहुत देर न फ़रमाया कीजिये कि जी अफ़सुर्दा हो जाता है। अपने याराने अंजुमनको मेरा सलाम और शौक़ग़ायबाना कहिये मुहम्मद अहमद तसलीम गुज़ार हैं। कमाल ताजीलमें यह चंद सतरें लिख दीं। बेरब्ती और बदख़तीका अुज्र क़बूल हो।

राक़िम आसमा अमीर फ़क़ीर अफ़ायना
(बनाम सैयद जाहिर हुसैन, रअीस सहारनपूर)

मौ. वहीदुद्दीन सलीम

मृत्यु-स. १९२८ अी.

मौलाना साहब पानीपतके रहनेवाले थे। यह सर सैयदके दोस्त और अनुयायी थे। और अुनके साथ मरते दमतक रहे। अुर्दू जबानमें अच्छे अच्छे हिंदी शब्दोको खपानेकी कोशिश करनेवालोंमें यह भी अेक थे। अिनकी शैली निहायत जोरदार और पुरमानी थी। अुस वक़्तके मशहूर रिसालोंमें यह बहुत अच्छे अच्छे मज़मून लिखा करते थे। अिनके मशहूर लेख 'तुलसीदासकी शायरी' 'अरबकी शायरी' वग़ैरह हैं जो रिसाला 'अुर्दू' में शाया हुए थे। 'वज़अ अिस्तलाहात' नाम की अिनकी किताब भी काफ़ी मक़बूल हो गयी है। हैदराबादकी अुस्मानिया युनिवर्सिटीमें अिन्होंने अेक अर्सेतक अुर्दूके प्रोफेसरका काम किया था।

मुंशी दयानारायण निगम

जन्म सं. १८८१ अी.

मुंशी साहब कानपुरके अेक प्रतिष्ठित कायस्थ खानदान से हैं। स. १९०३ अी. में बी. अे. पास करके अिन्होंने मुंशी शिवव्रतलाल बर्म्मनका शुरू किया हुआ मशहूर रिसाला 'ज़माना' अपने हाथमें ले लिया जो अब तक निहायत कामयाबीसे जारी है। मुंशी साहब अेक संचालक और वृत्तलेखककी हैसियतसे नौजवानोंके लिए अच्छे मार्ग-दर्शक हैं कि वह आपकी मिसालको देखें और आपकी कामयाबीसे सबक

हासिल करें। ज़बानकी सच्ची ख़िदमत करनेवाले अख़बारोंमें 'ज़माना' अेक है। अिसमें क़ाबिल हिन्दू और मुसलमान दोनों लेख लिखा करते हैं। मुन्शी साहब हिन्दुस्तानी अैकेडेमीके पुरजोश और सरगर्म मेंबर भी है।

लाला श्रीराम देहलवी

जन्म
स. १८७५ अी.

कहा जाता है कि लालाजीका खानदान राजा टोडरमल के खान्दानके साथ क़रीबी ताल्लुक रखता है। यह भी आज़ाद और हालीके समकालीन और दोस्त हैं। अुर्दू का अेक बहुत मशहूर तज़किरा 'हज़ार दास्ताँ' या 'खुमख़ाना अे जावेद' के यह लेखक हैं। यह किताब अुर्दू के शायरोंके हालोंका ख़ज़ाना और अुनके चुने हुए कलामका संग्रह है। अिसे शायरोंकी तारीख़की जान समझना चाहिये या यूँ कहें तो मुनासिब होगा कि वह अुर्दू नज़्म का 'अेनसाअिक्लोपीडिया' है।

मौलाना अब्दुल हक़

आनरेरी सेक्रेटरी
अंजुमने तरक़्क़ीअे अुर्दू (हिंद)

आजकलके मशहूर फ़ाज़िल और मुसन्निफ़ मौ. अब्दुल हक़ साहब 'अंजुमने तरक़्क़ीअे अुर्दू' के लम्बे अरसेसे आनररी सेक्रेटरी रहे हैं। रिसाला 'अुर्दू' के यह क़ाबिल संचालक हैं। अिन्होंने अंजुमनके ज़रिये कितनी ही पुरानी किताबें शाया की हैं और कितनोंको फ़ाज़िलाना दीबाचे लिखे हैं। अुर्दू की सबसे प्रामाणिक व्याकरण 'क़वायदे अुर्दू' अिन्होंने ही लिखा है। यह अख़बारों और रिसालोंमें जो लेख लिखतें हैं वह निहायत आला दर्जेके और जानकारी से भरे हुअे होते हैं। अिस तरह तमाम अुम्र अुर्दूकी ख़िदमदमें बिता देनेवाले शायद ही कोअी होंगे। हैदराबाद (दक्षिण) में अुर्दू का जो अितना दौर दौरा हो गया है अुसमें मौलाना साहबका बहुत बड़ा हिस्सा है।

अिस ज़मानेके जो मशहूर शांयर और नस्सार हैं अुनमें नीचे लिखे हुअे सज्जन अपना ख़ास दर्जा रखते हैं:—शेख़ अब्दुल क़ादर, पं. मनोहरलाल जुत्शी, पंडित बिशननारायण 'दर' मिर्ज़ा ज़ाफ़र अलीख़ाँ साहब, असर लखनवी, अहसन माहरवी, मु० हसरत जोश, मौ. हाशिमी, मेहदी हसन वग़ैरह।

अध्याय अुन्नीसवाँ

कहानी और अुपन्यास

पुराने क़िस्से

जैसी कि अक्सर हिन्दुस्तानी ज़बानोंकी हालत है, अुर्दूमें भी अंग्रेजी तालीमका पूरा असर जम जानेसे पहले पुराने ढंगके रस्मी क़िस्से चले आ रहे थे। वह या तो असली फ़ारसीसे लिये जाते थे या फ़ारसीके ज़रिये संस्कृतसे लिये हुअे होते थे। अक्सर अुर्दू शायरों और नस्सारोंने संस्कृत सीखनेकी तक़लीफ़ गवारा नहीं समझी, जिससे अच्छी अच्छी संस्कृत-की किताबोंका तर्जुमा करनेके लिये अुन्हें या तो अंग्रेजीके पाँव पकड़ने पड़ते थे या फ़ारसीके। अिस ज़मानेके क़िस्सोंमेंसे निन्यान्वे फ़ी सदी क़िस्से अरबी और फ़ारसीसे लिये गये थे और बाक़ी अेक फ़ी सदीमें वह क़िस्से आते हैं जो संस्कृत और फ़ारसीके किस्सोंको अिधर अुधरसे घटा बढ़ाकर नये ढंगपर पेश किये गये। कभी कभी हिन्दी, बँगला, मराठी, गुजराती वग़ैरह भाषाओंसे भी तर्जुमे किये जाते थे। अिन क़िस्सोंमें ज़्यादातर देव (राक्षस), परियाँ, जादू, तिलस्म, जादूगरोंकी लड़ाअियाँ, हुस्न व अिश्क़की घटनाअें, आदमीका जान-वर और जानवरका आदमी बन जाना वग़ैरह हिम्मत और बहादुरीसे भरी हुअी और दिलको लरजाने व दिमाग़को चकराने वाली चीज़े ही होती थीं। बयान करनेका ढंग सबका वही टका बंधा मामूली होता था। वही वही चीजें बराबर आती थीं जिन्हें पढ़कर ज़िन्दा दिल अूब जाय। अजीब व ग़रीब चीज़ोंका ज़िक्र तो बिलकुल आम था। अैसी हालतमें चरित्रके चित्रण, और भावोंके प्रदर्शनका कहीं पता भी न हो तो कोअी अचम्भेकी बात नहीं। अिन क़िस्सोंमें यह ज़्यादा मशहूर हैं

(१) अलिफ़ लैला—यह अेक हज़ार लम्बी लम्बी कहानियोंका सिलसिला है। (२) अमीर हम्ज़ाः—यह अेक बहुत लम्बी, दिलकश और हिम्मत से भरे हुअे कारनामोंकी कहानी है। अिसके लेखक 'अबुलफ़ैज़ी'ने यह अकबर बादशाहके लिये फ़ारसीमें लिखी थी। (३) बेताल पच्चीसी (४) बोस्ताँ ख़याल (५) क़िस्सा हातिमताअी (६) सिंहासन बत्तीसी (७) गुलबकावली-वग़ैरह।

अिसके बादकी सबसे मशहूर कहानी मिर्ज़ा रज़बअली बेग 'सुरूर' की 'फ़िसानाअे अजायब' है जिसका जिक्र हम पीछे कर चुके हैं। हालाँकि अिनकी तर्ज बहुत कुछ पुरानी है, मगर फिरभी अिसने अदबी दुनियामें अेक नयी रोशनी फैला दी। अिसकी घटनाअें बिलकुल मामूली और ज़बान निहायत बनावटी और पेचीदा है। अिस कमीको मौ. नज़ीर अहमदने दूर कर दिया। अिनके अुपन्यास 'अुपन्यास' कहे जानेके लायक़ हो गये। अिन्होंने अफ़सानोंका दर्जा भी काफ़ी बलन्द कर दिया। मौलाना साहबके नावेलोंमें ही आजके ज़मानेके नावेलोंकी झलक दिखाअी देती है। घटनाओंका सिलसिला, चरित्रचित्रण वग़ैरह चीज़ें अिब्तदायी हालतमें अिन्हींकी तसनीफ़ोंमें दिखाअी देती हैं।

पिछले ज़मानेमें अुर्दूमें तीन ज़बर्दस्त अुपन्यासकार हो गये हैं। वह हैं 'मौलाना नज़ीर अहमद,' 'सरशार' और 'शरर'। अिनमेंसे मौलाना साहबका ज़िक्र तो हम कर चुके हैं। अब सरशार और शररपर ग़ौर करेंगे। अिनके अलावा अिस ज़मानेके और भी बहुतसे लेखक हैं जिनमें, मुन्शी सज्जाद हुसेन, मिर्ज़ा मच्छूबेग 'आशिक़,' मुंशी ज्वालाप्रसाद बर्क़, नवाब सैय्यद मुहम्मद आज़ाद, मिर्ज़ा मुहम्मद हादी 'रुसवा', मुंशी धनपतराय 'प्रेमचन्द्र', ख्वाजा हसन निज़ामी, पं. सुदर्शनजी, राशिद अुलख़ैरी वग़ैरह बहुत मशहूर हैं। अिनमेंसे बाज़का मुख्तसर ज़िक्र आगे किया जायगा।

अुपन्यास

पंडित रतननाथ दर

'सरशार'

स. १८४६-१९०२ अी. पंडितजीका असली वतन कश्मीर था मगर वह लखनअूमें रहते थे। गुज़श्ता सदीके आख़िरमें यह अेक अजीब ज़िन्दादिल और बाकमाल शख़्स गुज़रे हैं। अिन्हें

बचपनसे ही लिखनेका शौक़ था और 'मरासला कश्मीरी' 'अवधपंच' 'मरातुल हिन्द' वग़ैरह अख़बारोंमें लिखा करते थे । अुर्दूके अलावा अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी और हिन्दी अिन चार ज़बानोंसे यह वाक़िफ़ थे । तर्जुमा करनेमें भी बड़ी निपुणता रखते थे ।

स. १८७८ अी. में यह 'अवध अख़बार' के अेडीटर हुअे जिसमें अिन्होंने अपनी मशहूर तसनीफ़ 'फ़िसाना अे आज़ाद' का सिलसिला शुरू किया। यह रचना स. १८८० अी. में अलाहिदा किताबकी सूरतमें शाया हुअी ।

अिस क़िस्सेका प्लाट सादा, सुलझा हुआ और बड़ा मजेदार है । मज़-मूनकी सजधज तो ग़ज़ब की है । शैली निहायत बेतकल्लुफ़, आसान, ताज़ा और नैचरल है । हँसी मज़ाक़ और विनोद तो अिसमें कूट कूटकर भरा हुआ है ।

किताबको अुठाकर कहीं बीचमेंसे भी पढ़ने लगें तो हँसते हँसते पेटमें बल पड़ जायेंगे । अुस ज़मानेके लखनअूकी सोसायटीकी हूबहू तस्वीरें खींचने में अिन्होंने कमाल किया है । अिससे अच्छी और सही तस्वीरें किसीने नहीं खींची हैं । वास्तविकताके साथ साथ अिन्होंने अतिशयोक्तिसे भी काम लिया है जिससे परिहास और मज़ा बेहद बढ़ जाता है । अिनकी यह खासियत है कि अिन्होंने अपने अुपन्यासोंमेंसे ग़ैर फ़ितरी (अप्राकृतिक) बातोंको खारिज करके अिन्सानी ज़िन्दगीकी मामूली-सी घटनाओंमें अेक ग़ैर मामूली दिल-चस्पी पैदा कर दी । अिस किताबका तर्जुमा हिंदीमें 'आजाद कथा' के नामसे प्रेमचन्दजीने किया है ।

'फ़िसाना अे आजाद' के अलावा और भी बहुतसे किस्से सरशारने लिखे हैं जिनमें नीचे लिखे बहुत मशहूर हैं ।

'सैरे कोहसार' 'जामे सरशार' 'कामिनी' 'खुदाअी फ़ौजदार' 'बिछुड़ी दुलहिन', 'पी कहाँ ?' वग़ैरह ।

सरशारकी जबान साफ़, सुलझी हुअी, मुहावरेदार और जोरदार है । मगर अिनमें त्रुटियाँ भी कम नहीं थीं । अेक तो अुनके किस्सोंके कथानक अेक सूत्रमें बँधे हुअे नहीं होते और घटनाओंमें भी अक्सर सिलसिला टूटा

हुआ होता है। अिनमें भावोंकी भी कमी है और फ़िलसुफ़ियत और संस्कारिताकी खुशबू शायद ही मिलती है। कहीं कहीं वह अशिष्ट बातें भी लिख गये हैं।

सरशार और सुरूरका मुक़ाबला बड़ा दिलचस्प है। 'फ़िसानाअे अजायब' और 'फ़िसानाअे आज़ाद' दोनोंकी तस्वीरें लखनअूकी हैं और दिलचस्पीमें कोअी भी अेक दूसरे से कम नहीं है। लेकिन सुरूरने चीज़ोंका वर्णन किया है और सरशारने आदमियोंका। हूबहू तस्वीरें खींचना ही सरशारका मक़सद था। अिसलिये अुन्होंने अच्छाअियाँ और बुराअियाँ दोनोंको किसी तकल्लुफ़के बिना ज़ाहिर किया। अिसके विपरीत, सुरूरको आयडियल तस्वीरें खींचनी थीं अिसवास्ते वह अच्छाअियोंको दिखाते वक़्त बुराअियोंको छिपाते थे। सरशारकी ज़बान और शैली कुछ ज़्यादा आधुनिक थी और सुरूर कुछ पुराने ढंगकी ज़बान और तर्ज़के मालूम होते हैं।

आख़िरी अुम्रमें सरशार हैदराबाद (द०) चले गये थे, जहाँ अुन्होंने अिन्तक़ाल किया। अिन्तकालसे कुछ समय पहले अिन्होंने शराब पीनेकी हद कर दी थी और यही अुनकी अकाल-मृत्युका कारण था। यहाँ अिस बातका ज़िक्र भी करना चाहिये कि सुरूरकी मौतका बाअिस भी मैनोशी (मदिरापान) ही था।

अुर्दू अुपन्यासकी अंग्रेज़ी तर्ज़पर ले जानेका फ़ख़्र सरशारको ही हासिल है। अिनकी स्मरण-शक्ति बहुत ज़बर्दस्त थी और धार्मिक पक्षपात तथा मज़हबियतसे यह बरी थे। ग़र्ज़ेकि सरशार अेक ज़बर्दस्त जर्नालिस्ट, मशहूर मुसन्निफ़, बुद्धिमान भाषाशास्त्री और अेक ख़ास तर्ज़के आविष्कारक थे। वह अेक खुशगो शायर भी थे।

सरशार साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

"आज़ाद:–(अेक मुसलमान से) क्यों भाअीसाहब यह भीड़ कैसी है?

मुसलमान:--अजी हुज़ूर ज़मानेकी नैरंगी है।

दूसरा:--हात् तेरेकी।

तीसरा:--दाम ज़सो मै बगरिफ़्त व ख़रकाश्रे सालोस ।
कुजास्त दैरे मुग़ाँ व शराब नाब कुजा ॥

हिन्दू:--नारायण ! नारायण !! बुरी हुश्री ।

खोजी:--क्या बुरी हुश्री ? कुछ हम भी तो सुनें !

तमाशाश्री:--यह सुननेकी बातें नहीं हैं । यह श्रैसी बातें हैं कि अगर सुनें भी तो कान बन्द कर ले । श्रिबरत ! श्रिबरत !! श्रिबरत !!!

श्राज़ाद:--(अेक कान्स्टेबलसे) क्यों भाओी जवान, यह कोई फ़क़ीर है ?

कान्स्टेबल:--श्रजी हुजूर यह फ़क़ीर नहीं चण्डाल हैं । श्रब आज अिनकी मौत हो जायेगी ।

खोजी:--लाहौल विला कूवत । अैसे नामाकूल श्रादमियोंसे साबिक़ा पड़ा है कि तोबा ही भली । असल बात कोश्री बताता ही नहीं । तोबा तोबा सब कर रहे हैं । जान श्रज़ाबमें है । पूछें किससे ? (आगे बढ़कर) हम खुद फ़क़ीर ही से पूछते हैं । क्यों बाबाजी यह क्या हुश्रा ? कुछ हम भी तो सुनें !

श्रेक आदमी:--यह बाबाजी हैं आपके ?

[फ़िसाना अे श्राज़ाद]

मौलाना मुहम्मद अब्दुल हलीम 'शरर'

सन् १८६०–१९२६ अी.

शरर साहब लखनअूके रहनेवाले थे । लेकिन श्रिन्होंने श्रपनी प्राथमिक शिक्षा मटियाबुर्ज (कलकत्ता) में हासिल की थी । अुन्नीस वर्षकी अुम्रमें यह लखनअू वापस श्राये । सन् १८८७ श्री. में श्रिन्होंने अपना मशहूर रिसाला 'दिलगुदाज़' जारी किया जो कअी बार बंद होकर फिरसे शुरू होता रहता था । श्रिसमें बहुत श्राला दर्जेके मज़मून श्राते थे जिनमेंसे बहुतसे अुर्दूके कोर्सोंमें लिये गये हैं । 'दिलगुदाज़' में नॉवेलनवीसीका सिलसिला भी अिन्होंने शुरू किया था ।

शरर साहब अुर्दू अुपन्यासकारोंमें अेक बहुत अूँचा दर्जा रखते हैं । तारीख़ी—श्रौर ख़ासकर पुराने श्रिस्लामसे ताल्लुक़ रखनेवाले तारीख़ी-नावलोंमें तो यह श्रपना सानी नहीं रखते । श्रिस क़िस्मके अुपन्यासोंकी

तादाद क़रीब तीस है जिनमें 'हसन और अंजलीन', 'फ़िर्दौसे बरीं' 'मंसूर मोहना' वग़ैरह बहुत ही मशहूर हैं। अिनके अलावा चंद सामाजिक अुपन्यास भी अिन्होंने लिखे हैं। मसलन् 'ग़रीबका चिराग़', 'हाँ', 'नहीं', 'लाला खुदरू', 'देहातकी लड़की' वग़ैरह।

अिनके विषय बड़े अजीब व ग़रीब होते हैं जिनपर अुनसे पहले किसी ने क़लम नहीं अुठाया था। 'महशर' 'दिलगुदाज़' 'मुहज़ब' 'अित्तहाद' वग़ैरह कुछ आठ नअू हफ़्तावाराना और माहवाराना अख़बार अिन्होंने शुरू किये थे जो चद रोज़ चलकर बंद पड़े। अिनकी रचनाअें भी कोअी अेक सौ से कम न होंगी। हिन्दू-मुस्लिम अेकताके यह पूरे हामी थे।

अिनकी ज़बान साफ़ सादा और रोजमर्राकी होती है। ज़बान और मज़मून दोनों रोजमर्राके होनेकी वजहसे अिनके नावेल बहुत मक़बूल हो गये। नावेलको अशिष्ट और भद्दे लफ्ज़ों और बेहूदा मज़मूनोंसे अिन्होंने पाक किया। यह सिर्फ़ अेक नावेल-निगार ही न थे बल्कि मुवर्रिख़, अदीब और ज़बर्दस्त जर्नैलिस्ट भी थे। अिन्सानी भावोंपर अिन्होंने अिस तरह और अितना अधिकार जमाया है कि जिस क़िस्मके भाव चाहते हैं अपने अुपन्यास पढ़नेवालोंके दिलमें पैदा कर देते हैं।

मिर्ज़ा मुहम्मद हादी

'रुसवा'

अिन्होंने भी काफ़ी अुपन्यास लिखे हैं जिनमें 'अुमराव जान अदा' बहुत आला दर्जेका है। बाक़ायदा कथानक चरित्र-चित्रण वग़ैरह बातें अिसमें साफ़ तौरपर नजर आती हैं। अितनी दिलचस्पी वाक़यों की कसरत और अिन्सानी फ़ितरतकी अितनी सच्ची तस्वीर शायद ही किसी दूसरे अुपन्यासमें मिलेगी।

ख़्वाजा हसन निज़ामी

जन्म स. १८७५ अी.

ख़्वाजा साहब दिल्ली के पासकी निज़ामुद्दीन अवलिया की गद्दीसे सम्बन्ध रखते हैं और आजकी अिस ढलती अुम्रमें भी बड़े जोश व ख़रोशके साथ अुर्दू ज़बानकी तरक़्क़ी और प्रचारमें हिस्सा लेते हैं। अिनकी बीसों किताबें आम व ख़ासमें

मक़बूल हैं जिनमें 'मुहर्रमनामा' 'बेवीकी तालीम' 'औलादकी शादी' 'जग-बीती कहानियाँ' सिपाराओ दिल, बहुत मशहूर हैं। अिनकी 'कृष्णाबीती' ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों समाजोंमें बड़ी हलचल मचा दी थी। कुराने शरीफ़का हिन्दी तर्जुमा अिन्हींकी कोशिशोंका नतीजा है। गदरके बारेमें अिन्होंने जो दस किताबें लिखी हैं अुनके बीसो अेडिशंन आज भी निकलते जाते हैं।

अिनकी ज़बान निहायत साफ़ सहल और दिलकश होती है। अिनकी खुसूसियत यह है कि बिलकुल मामूली से मामूली मज़मूनों और ख़यालोंको यह निहायत दिलकश और प्रभाव पूर्ण तरीकेसे अदा करते हैं।

× × x

शरर साहबकी ज़बानका नमूना देखिये:—

सच्ची तरक़्क़ीयाफ़्ता क़ौम वह है जिसमें मज़कूरा सिफ़ात यानी बाहमी अुन्स व मुहब्बत और हमदर्दी व अित्तफ़ाक़का जोश व जज़्बाओ अेतदालकी हदसे तजावज़ करके अुस दर्जेको पहुँच जाय जिसे अीसारे नफ़्स कहते हैं। यानी क़ौम और वतनकी फ़लाहके सामने अपनी जानोमालका ख़याल न रहे। बल्कि लोग क़ौमी मफ़ादपर शख़्सी फ़वायद व मुनाफ़ेका कुरबान करनेको तैयार हो जाया करें। दुनियामें किसी क़ौमने तरक़्क़ी नहीं की है जबतक अुसमें हमदर्दी व अीसारे नफ्सका जोश नहीं पैदा हुआ है।

(अीसारे नफ़्स)

किसी ज़बानमेंसे अगर अुपन्यासोंको निकाल दिया जाय तो वह अुतनी ही फीकी और बे-मज़ा हो जायगी जितना कि बग़ैर नमकका सालन होता है। अिसलिये अुपन्यासोंका महत्त्व बहुत बड़ा है। लेकिन दूसरी भाषाओंके मुक़ा-बलेमें अुर्दूके अुपन्यास कुछ पिछड़े हुअे-से मालूम होते हैं। अिसका कारण अुसमेंसे पुरानेपनकी बू अभी नहीं निकल पायी है।

कहानियाँ

जिस तरह अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी गुजराती, बँगला वग़ैरहमें छोटी छोटी कहानियोंकी बाढ़ आ गयी है अुस तरह अुर्दूमें नहीं आयी हैं;

अब भी अक्सर कहानियाँ लम्बी ही हुआ करती हैं। अिस तरफ़से किसीने कोअी खास कोशिश की हो तो हमें अुसका पता नहीं है।

आजकलके कहानी लेखकोंमें यह नाम बहुत मशहूर हैं :—स्व. मुंशी प्रेमचंद, महाशय सुदर्शन, सरदार अहमद अली, कृष्णचन्द्र, अुपेन्द्रनाथ 'अश्क' कृष्णकुमार, रशीद जहाँ, अख़्तर रायपूरी, मिर्जा अजीम बेग़ चग़ताअी वग़ैरह। अिनमेंसे बाज़ अब हिन्दीमें भी लिखने लगे हैं। अब्दुल लतीफ़, शौकत थानवी, फ़रहतुल्ला बेग, अल्लामा पं. ब्रजमोहन दत्तात्रय कैफ़ी, डॉ. लक्ष्मीदत्त वग़ैरह नामभी बहुत मशहूर हैं।

मुंशी धनपतराय 'प्रेमचन्द'

स. १८८१–१९३७ अी.

प्रेमचन्दजी बनारसके रहने वाले थे। हिन्दी और अुर्दू दोनों ज़बानोंके आसमानमें अेक ही तेजके साथ चमकने वाला यह अेक ही तारा था जिससे ज़्यादा रोशन तारा आज तक नहीं हुआ है। स. १९०१ से ही अिन्होंने 'ज़माना' में मज़मून लिखना शुरू किया। स. १९०४ अीं, में अिनका अुपन्यास 'प्रेमा' हिन्दीमें निकला। अिसके बाद धीरे धीरे 'जलवाअे अीसार' 'बाज़ारे हुस्न', यह अुर्दू और 'सेवा सदन' 'कर्म भूमि' 'काया कल्प' 'गोदान' वग़ैरह हिन्दी अुपन्यास शाया हुअे। (हिन्दी अुपन्यासोंके अुर्दू तर्जुमे भी हो चुके हैं) प्रेम पच्चीसी प्रेम बत्तीसी, ख्वाबो ख़याल, 'फिर्दौसे ख़याल' वग़ैरह अिनकी कहानियोंके संग्रह बहुत ही मक़बूल हो गये हैं। छोटे छोटे क़िस्से लिखनेमें प्रेमचन्द्रजी अपना सानी नहीं रखते थे।

आख़िरी अुम्रमें प्रेमचन्दजीने हिन्दी ज़बानकी बहुत भारी ख़िदमत की। अिनकी हिन्दी ज़बान अितनी आसान, साफ़ और मीठी होती है कि थोड़ी सी तब्दीली करनेपर वह अुर्दू कही जा सकती है। और अिसीलिये 'हिन्दुस्तानी' ज़बानके हामी प्रेमचन्दजीको गुरु मानते हैं। न अुन्होंने संस्कृत लफ़्ज़ोंसे लदी हुअी पंडिताअू हिन्दीको अपनाया न अरबी फ़ारसीके शब्दोंसे लबरेज़ अुर्दू अे मुअल्लाको ही। हिन्दुस्तानी देहातोंकी हू बहू तस्वीरें और वहाँके किसानोंके जीवनकी सच्ची और रोज़मर्रा घटनाओंको निहायत अुम्दा तरीक़ेसे बयान कर–

नेके लिये भला वह 'हिन्दुस्तानी' को छोड़ और किस ज़बानकी मदद लेते? अुनकी बेवक़्तकी मौतसे हिन्दुस्तानी अदबी संसारको ज़बर्दस्त सदमा पहुँचा है।

महाशय सुदर्शनजी

मुन्शी प्रेमचन्दजीकी बाज़ ख़ासियतोंने महाशय सुदर्शनजीपर भी अपना रंग जमाया है। अिनके 'मुहब्बतका अिन्तक़ाम' नाटकपर पंजाब गवर्मेंटने पांच सौ रुपयोंका, 'बहारिस्तान' नामके कहानी-संग्रहपर साढ़े सात सौ रुपयोंका और 'सुदर्शन-सुमन' पर अेक हज़ार रुपयोंका अिस तरह अिनाम दिये हैं। 'बेगुनाह मुजरिम' 'चन्दन' 'तायरे ख़याल' 'सोलह सिंगार' 'अन्धेकी दुनिया' 'सदाबहार फूल' 'क़ौसे कज़ह' 'चुटकियाँ' 'मनकी मौज' वग़ैरह कअी अुपन्यास, नाटक और क़िस्सोंके संग्रह अिन्होंने लिखे हैं। बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जीके अक्सर नावेलों को अुर्दूमें लानेका काम अिन्होंने किया है। आज तक अिनकी सत्तर से ज़्यादा किताबें शाया हो चुकी हैं। आप पंजाबके बाशिन्दे हैं मगर आजकल बंबअीमें रहकर 'हिन्दुस्तानी' की सेवा कर रहे हैं।

अध्याय बीसवाँ

नाटक और परिहास

तमहीद:—

अदबी दुनियामें नाटकोंका आगमन मूर्तिपूजाकी यादगारके तौरपर हुआ था। अिस कलामें यूनानियों और हिन्दुओंने जितनी तरक़्क़ी की थी अुतनी और किसी भी क़ौमने नहीं की थी। कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानमें नाटकों का जोर गौतमबुद्धके ज़मानेके बाद हुआ जब कि हिन्दुओंको अपनी बुतपरस्तीको ज़िन्दा रखनेकी ख़ास ज़रूरत महसूस हुआी। और अिसीलिये यहाँके नाटकोंमें अीश्वर, धर्म, सदाचार वग़ैरह बातोंको अहमियत मिली।

लेकिन अुर्दूका ड्रामा तो अेक अैसा ग़ैरमुल्की पौदा है जिसने अंग्रेज़ोंके यहाँ आ जानेके बाद ही ज़ोर पकड़ा। यह सचमुच अेक हैरतकी बात है कि सैकड़ों साल हिन्दुस्तानी आबोहवामें बढ़ते रहनेके बावजूद अुर्दू ज़बानमें देसी ड्रामेकी कलम न लग सकी। हालाँकि अुर्दू जबान ख़ास हिन्दुस्तानकी हिन्दीकीही बुनियादपर खड़ी हुआी है; पर मुल्ककी बदक़िस्मतीसे संस्कृत और हिन्दी अदीबोंने चाहे ग़फ़लतमें कहिये, चाहे झूठी शानके ख़यालमें कहिये, अुसे लात मारकर दूर हटा दिया जिससे अुस बेचारीको मजबूरन् मुसलमानों ही की गोदमें पलना पड़ा। च्यूँकि हिन्दी और संस्कृतसे अुर्दूदाँ मुसलमानों में कुछ नफ़रत-सी हो गयी थी अिसलिये न संस्कृतकी नज़्म और ड्रामेने अुर्दू नज़्म और ड्रामेपर कोअी असर किया और न हिन्दी की ही। दूसरे, संस्कृत और हिंदी नाटकोंका सुवर्णयुग तब ख़त्म हो चुका था जब अुर्दू ज़बान 'ड्रामा' की कलम लगवा लेने लायक़ बन गयी थी। फिर, च्यूँकि अिस्लामको माननेवाले लोगोंमें बुतपरस्ती, तस्वीरकशी रक़्स (नृत्य),

और मौसीकी (संगीत) वगैरह बातोंको, जो कि नाटककी जान हैं, ममनूअ (वर्जित) समझा गया था, अिसलिये फ़ारसी जबानसे नाटक मिलना भी कुछ नामुमकिन सा था हालाँ किमर्सिया भी अेक किस्मका नाटक ही है। कुछ लोगोंकी राय है कि सबसे पहला नाटक फ़रुखसियरके जमानेमें (फ़ारसीमें) तैयार हुआ जिसका अुर्दू तर्जुमा फ़ोर्ट विल्यम कॉलेजकी तरफ़से काज़िमअली 'जवान' ने किया।

जो हो, अिन्सानकी जिन्दगी में नाटक अपनी अेक ख़ास हैसियत रखता है। वह हर जमानेमें किसी न किसी सूरतमें मौजूद होता ही है। हिंदुस्तानमें अेक ज़मानेमें रामलीला और कृष्णलीला की बड़ी धूम थी जो बादमें तमाशों और नाटकोंमें तब्दील हो गयी। क्या अिन लीलाओंमें हिंदुओंके साथ साथ मुसलमान लोग भी भाग न लेते होंगे?

अुन्नीसवीं सदीके मध्यसे अुर्दू ड्रामेका सुराग मिलता है। हालाँकि नाटक खुदाके कामोंकी नक्क़ाली है, जो अिस्लामके लिहाज़से अनुचित है, मगर अैश व आरामके गुलामोंके लिये मजहबकी जंजीरें नहीं के बराबर होती हैं। अुनका मजहब ही अैश व आराम हो जाता है। अिसलिये हम देख सकते हैं कि सबसे पहला नाटक वाजिदअली शाहके रंगीले ज़मानेमें ख़ास शाही दरबारियोंके लिये खेला गया था। अिसका नाम था 'अिंद्र-सभा', जिसे नासिख़के शागिर्द 'अमानत' ने स. १८५३ अी. में नवाब वाजिदअली शाहके हुक्मसे तसनीफ़ किया था। च्यूँकि लखनअूके अितिहासमें यह शौक़ व अिशरतका बेहतरीन दौर था, नाचरंगके अलावा नवाबों और दरबारियोंके पास दूसरा कामही न था अिसलिये यह नाटक बहुत ही मक़बूल हो गया। अिसके कितने ही तर्जुमे और अेडिशन निकल चुके हैं। अिस नाटकमें खुद वाजिदअली शाह अिन्द्र बनते थे और महलकी दासियाँ परियाँ बनती थीं। नाटक हिन्दू पुराणोंमेंसे लिया गया था, खेलने वाले मुसलमान थे और स्टेज था युरोपियन। अिस तरह वह अेक अजीब खिचड़ी थी। कहते हैं कि अिसी 'अिन्दर सभा' की खिल्ली अुड़ानेके लिये बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने 'बन्दर सभा' लिखी थी।

अिसके बादका अुर्दू नाटकका हाल अेक ही वाक्यमें कहना हो तो हम यूँ कह सकते हैं कि हिन्दू-मुसलमान लेखकोंने संस्कृत, हिन्दी, बँगला, मराठी या अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, फ्रान्सीसी वग़ैरह ज़बानोंसे नाटकोंके तर्जुमें करके पारसी लोगोंकी थिअेट्रिकल कंपनियोंको दिये जिन्होंने अेक ब्यौपारके तौर पर गाँव गाँव और शहर शहर घूमकर वह लोगोंको दिखलाये।

अिस ज़मानेकी यह खासियत है कि अुस वक्त नाटकके अभिनेता और अभिनेत्रियाँ नस्रमें न बोलकर शेरोंमें बातचीत करते थे और ग़ज़लें गाते थे। ज़बान बिलकुल मामूली और घटनाअें अतिशयोक्तिपूर्ण होती थीं। नाटकमें काम करनेवाले मर्द अदना दर्जेके आवारा और औरतें अक्सर बाज़ारी होती थीं। नाटकोंमें चूमाचाटी, भद्दी और अश्लील बातचीत, मारकाट, फाँसी वग़ैरह चीजें लाज़िमी थीं। अिसलिये आम लोगोंका दिलबहलाव तो वह ज़रूर करते थे मगर अूँचे और खान्दानी कानों और आँखोंको वह बिलकुल बेहूदा और नागवार मालूम होते थे।

लेकिन जैसे जैसे अंग्रेजी तालीम फैलती गयी वैसे वैसे यह चीजें कम होती गयीं और अुर्दू नाटकने भी साहित्यिक रूप धारण करना शुरू किया। अब धीरे धीरे अच्छे अच्छे नाटक स्टेजपर आने ही लगे थे कि सिनेमाका ज़बर्दस्त डंडा अुनके सिरपर बैठ गया और अुन्हें स्टेजपरसे भागकर सिर्फ किताबों के अन्दर ही अपनेको दफनाना पड़ा। दूसरी हिन्दुस्तानी ज़बानोंके नाटकोंकी तरह अुर्दू नाटक पर भी सिनेमाने काफ़ी असर किया है। आज-कलके नाटकोंकी तरफ़ स्टेजपर खेले जाने वाले नाटकोंकी दृष्टिसे देखना बेकार है। फिर भी अगर अुर्दू वाले मराठी भाषा-भाषी लोगोंकी तरह कोशिश करें तो वह भी अपने नाटकोंको जिन्दा रख सकेंगे।

यहाँ हम अुन थिअेट्रिकल कंपनियोंका मुख्तसर ज़िक्र करते हैं जो अेक ज़मानेमें बहुत मशहूर व मक़बूल थीं।

[१] ओरिजिनल

थियीट्रिकल कंपनी:— अिसके मालिक सेठ पेस्तनजी फ़रामजी खुद अेक बहुत अुम्दा अैक्टर थे। 'रौनक़' बनारसी और 'ज़रीफ़' ने अिस कंम्पनीके लिअे नाटक तैयार करके दिये थे जिनमें 'रौनक़' के 'अिन्साफ़े महमूदशाह' का नाम अब भी मिलता है। अिन लोगोंने अैसी ज़बान लिखनेकी कोशिश की जो आम लोगोंकी समझमें आसानीसे आजाय क्योंकि अिन्हें ज़्यादातर काम जनतासे ही पड़ता था। अिसलिये अिनकी ज़बान 'हिन्दुस्तानी' कही जाने लायक़ थी।

[२] विक्टोरिया

नाटक कंपनी. अिसके मालिक खुर्शेदजी बालीवाला खुद बड़े हँसोड़ अभिनेता थे। अिस कम्पनीके नाटक लिखने वाले मुंशी विनायकप्रसाद 'तालिब' बनारसी थे जिन्होंने 'हरिश्चन्द्र' 'गोपीचन्द' 'लैलो निहा' 'दिलेर शेर' वग़ैरह नाटक लिखकर नाट्यकलाकी तरक़्क़ीमें काफ़ी मदद पहुँचायी।

[३] अल्फ्रेड

थिअेट्रिकल कंपनी अिसके मालिक कावसजी खटाव अेक अच्छे ट्रैजिक अैक्टर थे। कम्पनीके ड्रामा-निगार मेहदीहसन 'आहसन' लखनवीने अपनी साफ़ और मुहाविरेदार ज़बानमें 'चन्द्रावली' 'दिलफ़रोश' 'चलता पुर्जा' वग़ैरह नाटक लिखे जो काफ़ी मशहूर हो गये थे। अिनके बाद कंपनीकी ख़िदमत पं. नारायण प्रसाद 'बेताब' देहलवीके सिपुर्द हो गयी। बेताबजी 'शेक्सपियर' नाम अेक रिसाला भी निकालते थे। 'क़तले-नज़ीर' 'महाभारत' 'रामायण' 'पत्नी प्रताप' 'कृष्ण सुदामा' 'दावपेंच' 'ज़हरीला साँप' वग़ैरह बहुतसे नाटक लिखकर अुर्दूकी नाट्यकलामें काफ़ी विस्तार और तरक़्क़ी की।

अिन कंपनियोंके अलावा और भी बहुत-सी कंपनियाँ निकलीं और बंद हुअीं जिनमेंसे चंदके नाम नीचे लिखे जाते हैं:—

(१) न्यू अल्फ्रेड कंपनी — अिसके अिब्तदायी नाटक लिखने वाले आगाहश्र काश्मीरी थे। अिन्होंने बादमें अपनी निजी 'शेक्स-पियर थिअेट्रिकल कंपनी' खोली थी जो चंद ही रोजमें बंद हो गयी। अिनकी मशहूर तसनीफ़ोंमें 'सफ़ेद खून' 'शहीदे नाज़' 'असीर हिर्स' 'तुर्की हूर' 'खूब-सूरत बला' 'सूरदास' 'गंगावतरण' 'आंखका नशा' 'दिलकी प्यास' 'बनदेवी' 'नेक परवीन' वग़ैरह हैं। आगाहश्र साहबका अिश्क़ बहुत गहरा और भाव सखोल होते हैं। लेकिन अेक ही नाटकमें दो प्लॉट क़ायम करनेका जो दोष अुस जमानेमें चलता था, वह अिनमें भी मौजूद है।

(२) ओल्ड पारसी थिअेट्रिकल कंपनी।

(३) भारत व्याकुल कंपनी, मेरठः—अिसमें बुद्ध भगवानका तमाशा खूब होता था।

(४) लाअिट ऑफ़ अिंडिया थिअेट्रिकल कंपनी, वग़ैरह।

पुराने नाटककारोंमें गुलाम हुसैन 'ज़रीफ़' मुहम्मद अब्दुल वहीद 'क़ैस' 'फ़ीरोजशाह 'रवाँ' विश्वंभर सहाय 'व्याकुल' वग़ैरह मशहूर हैं।

बीसवी सदीके नाटक

बीसवी सदीके शुरू शुरूमें ड्रामाको अच्छे दिन आते नज़र आने लगे। अंग्रेजी तालीमने नये ढंगके स्टेजका ख़याल लोगोंके दिलोंमें पैदा किया। मगर अिसी अर्सेमें सिनेमा आ मौजूद हुआ और स्टेजका ड्रामा मरने लगा। अब जो नाटक लिखे जाते हैं वह ख़ास कर अेक अदबकी शाख़ समझ कर लिखे जाते हैं न कि खेलनेके ख़यालसे। अिस नये ढंगके ड्रामा-नवीसोंमें नीचेके नाम मशहूर हैं--मुंशी द्वारकाप्रसाद 'अुफ़क़' अहमद शुजाअ 'बीअे' महाशय सुदर्शन, सैयद दिलावर शाह, मुंशी अिम्तियाज अली 'ताज़' डॉ. सैयद आबिद हुसेन, प्रोफ़ेसर अिश्तयाक़ हुसैन 'कुरैशी' वगैरह।

अदबी ड्रामामें 'क़ासिम व जहरा' 'तस्वीरे फ्रान्स' 'माशूक़ाअे फ़िरंग' 'बेदारी' 'परदाअे ग़फ़लत' 'मुहब्बतका अिन्तक़ाम' 'जान जराफ़त' 'बिगड़ेदिल' वग़ैरह नाम ज़िक्र करनेके क़ाबिल हैं।

सामाजिक नाटकोंमें मौ० अब्दुल माजद साहबका 'ज़दोपशे माँ' पं. ब्रज

मोहन दत्तात्रय क़ैफ़ीके 'राजदुलारी' और 'मुरारी दादा', महाशय सुदर्शनजी का 'अंधेकी दुनियाँ' कुरैशी साहबका 'नफ़रतका बीज' वग़ैरह मशहूर हैं।

सियासी नाटकोंमें कोअी आला दर्जेके नाटक नहीं हैं। फिर भी मुंशी अुमराव अलीका 'अल्बर्ट बिल' और मुंशी किशनचंद 'ज़िया' का 'ज़ख्मी पंजाब' काफ़ी अच्छे हैं।

आजकल अुर्दू ड्रामा अेक अदबी क़िस्मकी हैसियतसे क़ाफ़ी तेज़ रफ़्तारी के साथ तरक़्क़ी कर रहा है। और अुसमें सभी तरहके मज़मून आने लगे हैं।

व्यंग्य और परिहास

(ज़राफ़त)

अुर्दू कवितामें व्यंग्य और परिहासकी मिसालें सौदासे मिलती हैं। मसहफ़ी और अिशाने भी अिस सन्फ़में तबियत आज़माअी की है। अकबर तो ज़राफ़तके बादशाह थे। नस्रमें अिस क़िस्मके मज़मूनका प्रारंभ 'अवधपंच' से हुआ। सज्जाद हुसैन, मिर्ज़ा मच्छूबेग, रतननाथ सरशार वग़ैरह अिस ज़मानेके बेहतरीन ज़राफ़त-निगारोंमें हैं। बम्बूक़ मौलवी महफ़ूज़अली भी अिसी ज़मानेकी यादगार हैं। मौजूदा ज़मानेमें 'पितरस', 'रशीद सदीक़ी' और मिर्ज़ा फ़रहतुल्ला बेग़ बहुत मशहूर व्यंग्य-लेखक हैं। सुल्तान हैदर 'जोश' ने भी अिस विभागमें काफ़ी नाम कमाया है।

ख़्वाजा हसन निज़ामीका पाया अुर्दू ज़राफ़तमें बहुत बलंद है। अिनका अपना अेक ख़ास रंग है जो अिनकी रचनाओंमें जगह जगह पाया जाता है। मलार मौज़ी की 'गुलाबी अुर्दू' और 'नन्हेंकी माँ' किसी ज़मानेमें बहुत मक़बूल थे। मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताअी (जिनकी मृत्यु अभी पिछले साल हुअी है।) और शौकत थानवी ज़राफ़त-निगारकी हैसियतसे आजकल बहुत मशहूर हैं। अेम.असलम साहबका 'मिर्ज़ाजी' और अिम्तियाजअली ताज का 'चचा छक्कन' भी परिहासके अच्छे नमूने हैं। चग़ताअी साहबकी 'शरीर बेवी' 'कोलतार' 'मलफ़ूज़ात टामी' शौकत थानवी साहबकी 'दुनियाअे तबस्सुम' तूफ़ाने तबस्सुम' 'सैलाबे तबस्सुम', 'दिलफ़ें' 'ख़ानमख़ाँ' 'सौतिया-चाह' वग़ैरह तसनीफ़ें; मौलाना राशिक अलख़ैरीकी 'नानी अशो' 'विलायती नन्हीं' वग़ैरह किताबें परिहासके विषयमें बहुत मशहूर हैं।

अध्याय अिक्कीसवाँ

अख़बारी दुनिया

स. १८३६ अी. में हिन्दुस्तानमें प्रेसको आज़ादी मिली और देसी ज़बानोंमें अख़बार व किताबें कसरतसे निकलने लगीं। स. १८३८ अी. में मौलवी मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' के वालिद मौ० बाक़र हुसैनने 'अुर्दू' अख़बार दिल्लीसे जारी किया जिसे अख़बारके बजाय अेक अदबी रिसाला कहना मुनासिब होगा क्योंकि अुसमें अदबकाही चर्चा ख़ास तौरपर हुआ करता था। कुछ रोज चलकर यह बंद हो गया।

स. १८५० अी. से मुंशी हरसुखरायने लाहौरसे 'कोहेनूर' अख़बार निकाला जो हफ़्तावाराना था। अिसकी क़द्र महाराजा कश्मीर और महाराजा पटियाला भी करते थे जिससे वह बहुत दिनोंतक अच्छी तरह चला। लेकिन अिसकी कोअी अपनी पॉलिसी नहीं थी। जो शख़्स अेडीटर बन जाता वह अपने ढंगसे अुसे चलाता। मुंशी नवलकिशोर अिसीमें काम करते थे जिन्होंने बादमें जा कर 'अवध अख़बार' और 'नवलकिशोर प्रेस' चलाया।

अिनके बाद कानपुर, लाहौर, दिल्ली, बंबअी, मद्रास, वग़ैरह बड़े बड़े हिन्दुस्तानी शहरोंसे अुर्दू के अख़बार निकले जिनमें 'शोलाअे तूर' 'मतलाअे तूर' 'पंजाबी अख़बार' 'विक्टोरिया पेपर' 'अवध अख़बार', 'अवधपंच' 'अख़बारे आम' 'हिन्दुस्तानी' 'पैसा अख़बार' वग़ैरह नाम बहुत मशहूर हैं। अिनमेंसे बाज अदबी अख़बार थे और बाज मामूली ख़बरें देते थे।

'अख़बारे आम' पंडित मुकुन्दरामने लाहौरसे निकाला था। अिसकी कीमत बहुत कम और ख़बरें भी मामूली मगर दिलचस्प होती थीं। अिसलिये यह जनतामें बहुत मक़बूल हो गया। अफ़ग़ान और रूस-रूमकी

लड़ाअियोंके जमाने में अिसकी खपत बहुत बढ़ गयी और यह रोजाना हो गया। बादमें जब अिसके संपादक गोपीनाथ पंडित हो गये तब अिसमें अदबी मज़मून भी आने लगे और वह स्कूलोंमें लिया गया।

'अवध अख़बार' के मालिक मुंशी नवलकिशोर थे और अेडीटर 'सरशार'। 'सरशार' के दिलकश और हास्यपूर्ण कलामैने अिसे निहायत मक़बूल बना दिया था।

'अवधपंच' के मशहूर संपादक मुन्शी सज्जाद हुसैन काकोरवी (स. १८५६-१९१५ अी.) पहले शख़्स हैं जिन्होने हिन्दुस्तानमें ज़रीफ़ाना रंगका सबसे पहला अुर्दू अख़बार निकाला (स. १८७७ अी.) अिसने मुल्क और जबान दोनोंकी काफ़ी सेवा की। मुन्शी साहब निहायत नेक-दिल, साफ़ हृदयके और धार्मिक-पक्षपातसे रहित शख़्स थे। अिनकी अिबारतमें बेसाख़्तगी (अकृत्रिमता) और सफ़ाअी बेहद पायी जाती है। मजहबी रंगका मजमून लिखकर अिन्होने अपनी कलमको कभी ख़राब न किया।

'अवधपंच' ने नस्रकी अेक ख़ास शान पैदा कर दी। मजाक़ और ज़राफ़तको नस्रमें दाखिल किया, जबानमें ठीक ठीक मानीके शब्द शामिल करके अुसकी क़ीमत बढ़ा दी। किताबोंकी आलोचना पुरजोर तरीक़ोंसे करनी शुरू की। अिसके लेखक काबिल और फ़ाजिल लोग थे जो सोशल रिफॉर्मके सख़्त मुख़ालिफ़ होनेकी वजहसे सर सैयद और अुनके स्कूलके कट्टर दुश्मन थे। अिनमेंसे 'आशिक़', 'हिज्र' 'बर्क़' अकबर अिलाहाबादी, सैय्यद मुहम्मद 'आजाद' वग़ैरह मशहूर और जबर्दस्त मुसन्निफ़ थे। 'अवधपंच' हिन्दुस्तानी रअीसोंका अुपदेशक, कॉंग्रेसके अुसूलोंका हामी, हिन्दूमुस्लिम अेकताका प्रयत्न करनेवाला मगर अिन्कमटैक्स बिल और सर सैयद के प्रस्तावों का पूरा विरोधक था। अिसके अेडिटर मुन्शी सज्जाद हुसैन अेक जबर्दस्त अुपन्यासकार थे। 'प्यारी दुनिया' 'मीठी छुरी' 'काया पलट' 'हयाते शेखचिल्ली' वग़ैरह अिनके नाविल बहुत आला दर्जेके हैं।

आजकलके अख़बारोंमें दिल्लीके 'तेज़', 'वहदत' लाहौरके 'जमीदार' और 'अिन्क़िलाब' बंबअीके 'ख़िलाफ़त' और 'अजमल' कलकत्तेका 'हिंद'

वग़ैरह रोजाना और 'मदीना' (बिजनौर) 'हिन्दुस्तान' 'अन्सारी' (दिल्ली) 'मनादी' 'रियासत' 'हमारी जबान' वग़ैरह हफ़्तावाराना और पंद्रह्-रोजा अख़-बार मशहूर हैं।

अख़बारोंके साथ साथ रिसाले (मासिकपत्र) भी निकलने लगे, जिनमें ख़ास तौरपर अदबी चीजें ही आया करती थीं। लेकिन सबसे पहला रिसाला 'तहज़ीब अुल अिख़लाक़' (सर सैयदका) अदबी नहीं बल्कि सोशल था। यह सात साल तक लगातार चला था। अिसके बाद कअी रिसाले निकले और बंद भी हो गये, जिनमेंसे बाज़ बहुत मशहूर हैं। 'पंजाब रिव्यू' (१८६८) 'गुलदस्ता अे नतीजाअे सख़ुन' 'पयामे यार' 'पयामे आशिक' वग़ैरह। अिनमें अक्सर ग़ज़लें ही छपती थीं। 'मोहमेडन ऑब्ज़र्वर' के अेडीटर अब्दुल क़ादिर साहबने 'मख़ज़न' निकाला जो बहुत मक़बूल हुआ। स. १६१० अी. में अिंडियन प्रेससे 'अदीब' निकला। अिस रिसालेकी याद लोगोंके दिलोंमें आज भी जिन्दा है। शररमरहूमका 'दिलगुदाज़' निगम साहबका 'ज़माना' लखनअूका 'निगार' लाहौरका 'हुमायूँ' आज़मगढ़का 'मारुफ़' दिल्लीके 'साक़ी' और 'कामयाब' औरंगाबादका 'अुर्दू' 'नैरंगख़याल' और 'सायन्स' बहुत मशहूर है। अिनके अलावा 'आलमगीर' 'अदबी दुनिया' 'जामिया' 'सितारा' 'फ़िल्मिस्तान' 'रहनुमाअे हिन्द' वग़ैरह और कअी रिसाले आजकल चलते हैं। अिन सबके ज़रिये अुर्दूकी जो सेवा हो रही है अुसका बयान करना मुश्किल है।

परिशिष्ट १

आजके शायर

[सन् १९४२ अी. में 'अुर्दूके अदीब' में 'कलके शायर' ही आ सके थे। अुसके बाद कअी कारणोंसे, जो सबको मालूम ही हैं, मैं 'आजके शायर' नामका अध्याय न लिख सका। जेलमें वक़्त तो काफ़ी मिला था, मगर ज़रूरी किताबें न मिलनेसे यह काम वैसा ही पड़ा रहा। आज भी मेरे पास पर्याप्त सामग्री नहीं है, फिर भी जो मवाद मैं अिकट्ठा कर सका हूँ अुससे कुछ न कुछ ख़याल ज़रूर आ सकेगा। यही बात 'आजके गद्य लेखक' नामक अध्यायके बारेमें भी है। मैं मानता हूँ कि मेरी जानकारी अद्यतन नहीं है, फिर भी अिन अध्यायोंको बिलकुल छोड़ देनेकी बनिस्बत जो कुछ लिखा जा सके, लिखनेकी कोशिश की है। अगर पाठक मेरी त्रुटियों और खामियोंकी तरफ़ मेरा ध्यान आकर्षित करनेकी मेहरबानी करेंगे तो मैं अुनका शुक्रगुज़ार हूँगा।]

— लेखक

अिस दौरकी खासियतें

अिस दौरकी शायरीपर सरसरी निगाह डालनेसे ही यह बात मालूम हो जायेगी कि आजकी शायरीका दायरा बहुत वसीअ हो गया है। अब ग़ज़लों-का दौर-दौरा कुछ कम हुआ है और नज़्में बहुत ज़्यादा लिखी जाने लगी हैं। अिन नज़्मोंके आकार-प्रकारमें भी बहुत वृद्धि हुअी है। यानी नज़्में हर विषयपर और लम्बी लम्बी लिखी जाने लगी हैं। अिससे पहले सिर्फ़ मर्सिये ही मुसलसिल (सिलसिलेवार) और मुस्तक़िल (ठोस, स्थायी) होते थे, मगर अब हर क़िस्मकी नज़्में खंड-काव्योंका रूप धारण करने लगी हैं। यह सब अंग्रेजीकी कविताके अध्ययनका असर समझना चाहिये। क्योंकि पश्चिमी साअिन्स, फ़िल्सफ़ा, फ़न वग़ैरहसे ज़्यादा परिचय हो जानेसे आम-तौरपर पढ़े-लिखे लोगोंकी दिलचस्पी पुरानी मुबालग़ाआमेज़ और बनावटी शायरीसे हटकर असलियत और वाक़यानिगारी (वास्तविक चित्रण) की तरफ़ ज़्यादा हो गयी। और अुसका असर अुर्दू शायरीपर भी पड़ा। आज भी पुराने ढंगकी अिश्क़ व मुहब्बतकी ग़ज़लें लिखनेवाले कुछ कम न मिलेंगे, लेकिन अब जो प्रगतिशील लेखकवर्ग और पाठकवर्ग तैयार हो रहा हैं अुसे अुसमें बहुत कम दिलचस्पी है। नज़्मोंका दौर भी अब कुछ कम होता हुआ दिखाअी दे रहा है, अुनकी जगह अब गीत आने लगे हैं। यह तब्दीली शायद सिनेमा-टॉकीके कारण हो रही है। अिससे अेक फ़ायदा तो यह हुआ है कि ज़बान बड़ी आसान और आमफ़हम हो रही है, क्योंकि गीत तो अवामको मद्देनज़र रखकर लिखे जाते हैं; अिसलिये अुनमें अरबी-फ़ारसीके बोझल अल्फ़ाज़ और ग़ैरफ़ितरी-(अप्राकृतिक) व ग़ैरहिन्दुस्तानी चीज़ें बहुत कम आने पाती हैं। आज जो ग़ज़लें लिखी जाती हैं अुनमें भी अिन बातोंका बहुत ख़याल रखा जाता है।

फ़िर दूसरी ज़बानोंसे नज़्मोंके मन्ज़ूम (पद्यमय) तर्जुमे भी होने लगे हैं जिससे अुर्दूका ख़ज़ाना काफ़ी भरा जा रहा है। अिन नज़्मोंके मतालेसे लोगोंको अिस बातका पता लगता है कि दुनियाकी दूसरी ज़बानोंमें किस तरहकी शायरी रिवाजमें आने लगी है। और अुससे लिखने और पढ़नेवालोंके दिमाग़में काफ़ी हलचल मच जाती है।

अिसलिये अब पुराने ढंगकी रस्मी बातें, बासी और बेहूदा विषय बहुत कम हो गये हैं।

अब हम कुछ और शायरोंके हालात लिखते हैं। अिनमेंसे कुछ तो अैसे हैं जिनका शुमार 'कलके शायरों' में होता है, मगर अुनका जिक्र पहले नहीं आया है अिसलिये अुनको अिस दौरके शायरोंके साथ ले लिया है:—

हसरत मोहानी

जनाब हसरत मोहानी साहबका नाम तमाम हिन्दुस्तानमें जो फैला है अुसकी असली वजह अुनकी अदबी खिदमत नहीं, बल्कि सियासी करीयर है। खिलाफ़तके जमानेमें आप कट्टर राष्ट्रीय मुसलमान समझे जाते थे, मगर बादमें धीरे धीरे आपमें फ़िरक़ावाराना जोश आने लगा। आजकल आप यू. पी. के पहले तबक़ेके मुस्लिम लीगियोंमेंसे हैं।

हिन्दुस्तानमें बहुत कम लोग जानते होंगे कि मोहानी साहब अेक अूँचे दर्जेके शायर भी हैं। मौलाना अबुल कलाम आजादकी तरह मोहानी साहब का भी असली नाम बहुत कम लोगोंको मालूम है। अुनका असली नाम सैयद फ़जलुल हसन है और 'हसरत' तखल्लुस है। क़स्बा मोहानके रहनेवाले हैं, अिसलिये हसरत मोहानी बन गये। अपने नामकी अिस गड़बड़ीके बारेमें खुद अेक जगह फ़रमाते हैं :—

जब से कहा अिश्क़ने हसरत मुझे।
कोअी भी कहता नहीं फ़जलुल हसन॥

हसरत साहबका जन्म स. १८७५ अी. में यू. पी. के अुन्नाव जिलेके मोहान कस्बेमें हुआ था। अिब्तदाअी तालीम आपकी घरपर ही हुअी। अुसके बाद आप अलीगढ़ युनिवर्सिटीमें दाखिल हुअे और वहींसे बी. अे. पास किया। पहले पहल तो अिलमी व अदबी खिदमातकी तरफ़ रुजहान (झुकाव) रहा, मगर जबसे राजकाजी मामलोंमें दिलचस्पी लेने लगे तबसे कोअी खास साहित्य-सेवा न कर सके। फिर भी गजलगोअीमें आपका मरतबा निहायत बलन्द और अिम्तियाजी (वैशिष्ट्यपूर्ण) है। अिसमें शक नहीं कि

अुर्दूकी मौजूदा ग़ज़लको निखारने और सुधारनेमें आपने बड़ा काम किया। नीरसताको दूर करके काव्यरसको प्राधान्य देना आपका असली वैशिष्ट्य है।

मोहानी साहब लखनअूके मशहूर शायर 'नसीम' के शागिर्द हैं। आपको पुराने अुस्तादोंके कलामसे फ़ितरी दिलचस्पी है, अिसलिये पुराने रंगका असर आपकी शायरीमें बहुत ज़्यादा पाया जाता है। साक़ी व पैमाना, शमा व परवाना, गुल व बुलबुलकी कविताअें अब भी लिखते हैं। पुराने लोगोंकी तरह लम्बी लम्बी ग़ज़लें भी लिखते हैं और पुराने मतरूक (त्यक्त) अलफ़ाज़ भी अिस्तेमाल कर जाते हैं; जैसे: न दीजियो, आन पहुँचे, बारे—वग़ैरह। मगर कलाम बिलकुल सुलझा हुआ और बेकार बातोंसे ख़ाली है। सफ़ाअी और शीरीनी हर जगह मौजूद है।

कवितामें दर्द व असरके साथ साथ ख़यालकी पाकीज़गीका लिहाज़ भी आप बहुत रखते हैं। सारी कविता न सिर्फ़ यास व नामुरादीका मुरक्का (संग्रह) है न अैश व निशातकी महफ़िल, अिसलिये पढ़ते वक़्त जी नहीं अुकता जाता। ज़बान आम तौरपर आसान और बोलचालकी रखते हैं, मगर कभी कभी ग़ालिबकी तरह फ़ारसीकी मोटी मोटी तरकीबें अिस्तेमाल कर जाते हैं जिससे प्रसाद-गुणमें कमी हो जाती है।

मोहानी साहबकी शायरीका दायरा हुस्न व अिश्ककी वारदातों तक महदूद नहीं है। आप मज़हबी, समाजी, राजकाजी वग़ैरह सभी विषयोंपर तबअ—आज़माअी करते हैं।

'जोश' मलीहाबादी:

जोश साहबका जन्म सन् १८९४ अी. में मलीहाबादमें हुआ था। आपको बचपनसे ही शायरीका चस्का रहा है। कुछ अर्से तक दारुत्तर्जुमा जामिआ अुस्मानियामें भी आप अदबी ख़िदमात अंजाम दे चुके हैं। आपने दिल्लीसे 'कलीम' नामका अदबी रिसाला शाया करना शुरू किया था। यह बहुत अूँचे दर्जेका रिसाला समझा जाता था, फिर भी वह ज़्यादा दिन न चल सका और बादमें 'नया अदब' में शामिल कर देना पड़ा। 'नया अदब' तरक्क़ी पसन्द (प्रगतिशील) लेखकोंका नुमायन्दा है जो हर माह लखनअूसे निकलता है।

जोश अव्वल दर्जेके गद्यलेखक (नस्रनिगार) भी हैं। सिर्फ़ अदबी मज़मूनोंपर ही नहीं, बल्कि समाजी, राजकाजी और अिक्तसादी (आर्थिक) विषयोंपर भी आप लिखते रहते हैं। आपकी नस्रनिगारीके अिम्तियाज़ी (वैशिष्ट्य-पूर्ण) पहलू हैं ज़ोर, जोश, साफ़गोअी और किसी क़द्र शेरियत। फ़िलहाल आप अपने वतन मलीहाबाद (यू. पी.) में रहकर अेक ज़बर्दस्त नज़्म —'हर्फ़े आखिर'—जिसका विषय अिन्सानियतकी शायराना तारीख़ है—लिख रहे हैं।

अिनकी कविता दो भागोंमें बाँटी जा सकती है :-(१) ग़ज़ल और (२) नज़्म। दिलकशी आपके कलामका ख़ास जौहर है। जोश और ज़ोरका दरया हर जगह लहरें मारता दिखाअी देता है। दूसरे प्रगतिशील लेखकोंकी तरह आप अपने कलामसे दुनियाको ख़्वाबे गफ़लतसे जगानेकी कोशिश करते हैं और अिक़बालकी तरह लोगोंको कार्य करनेकी ओर प्रवृत्त करते हैं; दुनियाको गुलमीसे नजात दिलाकर अपने पैरोंपर खड़े होनेकी तालीम देते हैं। मज़दूर पेशाकी हिमायत और सरमायादारीकी मुखालिफ़त आपका खास रंग है। पुरानी रूढ़ियों और समाजकी ख़राबियोंपर आप बहुत ज़ोरदार हमले चढ़ाते हैं। लेकिन आपकी कवितामें रूखापन बहुत कम पाया जाता है। अिश्क़ व मुहब्बत का रंग भी बहुत गहरा पाया जाता है। आजके शायरोंमें आप बहुत अूँचे दर्जेके शायर समझे जाते हैं।

'सफ़ी' लखनवीः

अलीनक़ी नाम और 'सफ़ी' तख़ल्लुस है। आपका जन्म सन् १८६२ अी. में लखनअूमें हुआ था। मौलाना सफ़ीकी नज़्में ज़्यादातर शीया कान्फ़रन्सके सालाना जल्सेके सिलसिलेमें लिखी गयी हैं और सच तोयह है कि शीया क़ौमको जितना फ़ायदा मौलाना सफ़ीकी नज़्मोंसे अमलकी तरफ़ क़दम अुठानेमें पहुँचा है अुतना शायद बहुतसे लीडरोंकी पुरजोश तक़रीरों और अमलसे भी न पहुँच सकता। आपकी शायरीमें दिलकशी बहुत ज़्यादा है, कड़ुवाहट बिलकुल नहीं। अिस तरहकी नज़्मोंका मजमूआ 'लख़्ते जिगर' के नामसे शाया हो चुका है। आपने अपने कलाममें हिन्दू-मुस्लिम अित्तेहादपर काफ़ी

ज़ोर दिया है। आपकी जबान गंगाजमनी ढंगकी है। अुसमें आपको अरबी, फ़ारसी, हिन्दी सभी जबानोंके लफ़्ज़ मिलेंगे। अिलाहाबादकी हिन्दुस्तानी अेकेडमीने आपकी मसनवी 'तन्ज़ीमुल हयात' पर पाँच सौ रुपयोंका अिनाम दिया है।

'फ़िराक़' गोरखपुरी

आपका जन्म सन् १८९६ अी. में हुआ था।

बी. अे. का अिम्तहान पास हो जानेके बाद सरकारने फ़िराक़को डिप्टी कलक्टरीके लिये मुन्तख़ब कर दिया और आअि. सी. अेस. के लिये भी नामज़द कर दिया था, मगर डिप्टी कलक्टर बननेके पहले ही आप कांग्रेसमें शरीक हो गये और दूसरोंको जेलख़ानेमें भेजनेके बजाय खुद जेल गये।

हालाँकि आपके पिता गोरखप्रसाद 'अिबरत' अच्छे शायर थे; फिर भी अुन्होंने फिराक़के बचपनमें अुनके शायरीके शौक़को अुभरने नहीं दिया। मगर अुनके फूफीजादभाअी राजकिशोरलाल 'महर' की सोहबतोंसे अुनको बहुत फायदा पहुँचा। पहले हजरत 'नासरी' से और बादमें 'नसीम ख़ैराबादी' से अिसलाह लेते रहे।

फिराक़ जिस जेलमें थे वह शेर व शायरीका मदरसा हो गया था। जनाब 'मदाह' 'आरिफ़', मौलाना मुहम्मद अली, 'हसरत मोहानी', मौलाना अबुलकलाम 'आज़ाद' वग़ैरहकी आये दिनकी सोहबतोंने बज़्मे सखुनकी गर्म बाजारीमें और ज़्यादह मदद की। जेलसे छूटनेके बाद फिराक़ क्रिश्चयन कालेज और सनातनधर्म कालेजमें अुर्दू पढ़ानेका काम करते रहे। अुसके बाद अिलाहाबाद युनिवर्सिटीमें अंग्रेजीके लेक्चरर बने। आजकल आप अिलाहाबादमें ही रहते हैं। फिराक़की कवितामें भावाविष्करण (जज़्बातनिगारी) पर बहुत जोर दिया जाता है। आपने गजलोंके अलावा नज़्में भी बहुत लिखी हैं। आपकी लिखी हुअी समालोचनाअें भी बड़ी अिज़्ज़त के साथ पढ़ी जाती हैं।

—x—

हफ़ीज़ जालंधरी

अपने गीतोंकी वजहसे हफीज जालंधरी बहुत मशहूर हो गये हैं। बेखुदी, सरशारी और रवानी अिनके कलामके मखसूस जौहर हैं। गजलोंमें दर्द व गुदाज बहुत काफी है। अिनके गीत भी बड़े मुतास्सिर हैं। नरम व शीरीं अलफाजका अिस्तेमाल बड़ी खूबीसे करते हैं। शाहनामाओ अिस्लाम 'नग़माजार' और 'सोजसांज' अिनकी महत्वकी रचनाअें हैं। नये छन्द, मादक संगीत और स्थानीय रंग अिन चीजोंकी वजहसे हफीज खालिस हिन्दुस्तानी कवि बन गये हैं।

अेहसान दानिश

आपने अिफ़लास (ग़रीबी) की आग़ोशमें आँख खोली और अुसीके सायेमें पलकर जवान हुअे। हिम्मत व अिस्तक़लाल (दृढ़ता) ने रहबरी (मार्ग दर्शन) की और आपने मज़दूरी, मेमारी, बाग़बानी और पहरेदारीकी सख़्त मन्जिलोंसे गुज़रकर भी शायरीकी दुनियामें अेक मुमताज़ हैसियत हासिल कर ली। मज़दूरों और मुफ़लिसोंकी ज़िन्दगीका आपको जाती तजुर्बा था अिसलिये आप मजदूरों और ग़रीबोंकी हूबहू तस्वीरें खीचनेमें अितने कामयाब हुअे हैं कि पढ़ने वाला रो अुठे। आपने कोअी बाक़ायदा तालीम नहीं पायी है अिस-लिये आप अिन्क़लाबकी जो तस्वीरें खींचते हैं वे साफ़ और सुलझी हुअी नहीं होतीं। वास्तविकताकी अपेक्षा कभी कभी भावोंके प्रभावमें बहुत ज़्यादा बह जाते हैं। 'बाग़ीका ख्वाब' या 'साधूकी चिता' जैसी भयानक नज़्मे आपके तल्ख़ तजुर्बोंके कारण ही पैदा हो सकीं। आपने रूमानी नज़्में भी काफ़ी लिखी हैं। ज़बान सीधी-सादी मगर दिलकश है, फ़ारसियतका रंग बहुत ही कम है। मीठी, ऊँची और सुरीली आवाज़में अपने गीत गानेके लिये आप बहुत मशहूर हैं। आपकी कविताके चार संग्रह प्रकाशित हुअे हैं जिनमें 'दर्दे जिन्दगी' मशहूर है।

अख्तर शेरानी

अख़्तर शेरानी अपने मीठे गीतोंके लिये मशहूर हैं। आप ख़ालिस रूमानी

शायर हैं। कलाममें बड़ा लुत्फ़ आता है मगर अुसमें गहराअी या वजन नहीं है।

अख्तरकी कवितामें आप अपनेको चाँद-सितारोंकी घाटियोंमें पायेंगे जहाँ फूलोंकी सुगंधिसे बयार अुन्मत्त है, जहाँ संसारका कोलाहल चुप हो गया है और जहाँ स्निग्ध ज्योत्स्ताकी चादर ओढ़े 'रीहाना' 'मरजीना' 'सलीमा' कविकी थकी हुअी रूहको शान्ति प्रदान करने आती हैं।

अिन कवियोंके अलावा नीचे लिखे कवियोंके नाम भी शायरीकी दुनियामें बहुत मशहूर हैं।

फ़ानी बदायूनी, नासरी, ज़ामन, असर, जलील, साक़ब लखनवी, ज़रीफ़, आरजू, रियाज, असग़र-गोंडवी, 'जिग़र' मुरादाबादी, 'सायल' देहलवी, यास व यगाना, महरूम, अिन्द्रनारायण मुल्ला, सीमाब, फ़ितरत, मिज़ाज, रविश, वग़ैरह।

——✲:✲——

परिशिष्ट २

नावेल और अफ़साने

अुर्दू ज़बानके शुरूसे ही अुसमें अफ़साने पाये जाते हैं। लेकिन बीसवीं सदीके शुरू होने तकके अफ़साने बिलकुल पुराने ढंगके और बग़ैर किसी ख़ास टेक्निकके होते थे। अंग्रेज़ी ज़बानके फैलनेके साथ साथ हिन्दुस्तानकी दूसरी ज़बानोंकी तरह अुर्दूमें भी नावेलों और क़िस्से-कहानियोंके तंत्र या टेक्निकका दौरदौरा शुरू हुआ। आजकल अुर्दूमें कअी तरहके नावेल और अफ़साने हर माह निकलते रहते हैं। नये ढंगके लेखकोंमेंसे नीचे लिखे लेखक बहुत मशहूर हैं।

राशिद अुलख़ैरी

मौलाना नज़ीर अहमदकी तरह राशिद साहब औरतोंकी अिसलाह और तरक़्क़ीके हामी हैं। आपकी कहानियाँ नैतिक और अैतिहासिक दृष्टिसे लिखी हुअी होती हैं। आप पुराने रस्मो--रिवाजोंके पूजक हैं अिसलिये अपने क़िस्सोंके ज़रिये लोगोंको मग़रिबी तहज़ीबकी कोराना तकलीदसे रोकते हैं और नअी रोशनी व तालीमकी मुख़ालिफ़त करते हैं। आपने बच्चोंकी फ़ितरत (स्वभावधर्मका) का मताला (अध्ययन) करके अुनके लिये मौज़ूं किताबें लिखी हैं। आपकी ज़बान दिल्लीकी तराशी हुअी ज़बान है। नस्वानी (औरतोंके) मुहावरोंके अिस्तेमालसे आपके कलाममें रंगीनी पैदा हो जाती है। आपके ज़्यादातर क़िस्से और नावेल दुःखांत हैं। मुस्लिम देवियोंमें आपकी किताबोंका बड़ा प्रचार है। आपने तीस चालीस-से ज़्यादा किताबें लिखी हैं जिनमें 'स्मर्नाका चाँद' 'शाहीन व दुर्राज' 'सुबहे ज़िन्दगी' 'शामे ज़िन्दगी' 'शबे ज़िन्दगी' वग़ैरह मशहूर हैं।

अली अब्बास हुसैनी

प्रेमचन्दकी तरह हुसैनी साहबके कलाममें मुक़ामी रंग काफ़ी है। देहातोंके भोलेभाले और सच्चे जीवनकी तस्वीरें बिलकुल हूबहू खींचते हैं।

अिनकी कहानियोंके प्लाट निहायत दिलकश और फ़ितरी होते हैं। आपकी ज़बान साफ़ और बामुहावरा है। आपने हिन्दीके लफ़्ज़ोंका भी अिस्तेमाल बड़ी खूबीसे किया है। 'आअि. सी. अेस.' और 'बासी फूल' आपके दो प्रकाशित कहानीसंग्रह हैं।

—×—

अख़्तर हुसैन रायपूरी

अंग्रेज़ी कहानी-कलाका अच्छी तरह अध्ययन करके अख़्तर साहबने अुर्दू और हिन्दीमें नये नये ढंगकी कहानियाँ लिखी हैं। आजकलके सामाजिक और आर्थिक प्रबंधकी ख़राबियोंपर आप बुरी तरह टूट पड़ते हैं। आप हिन्दी और अुर्दूके अच्छे जानकार हैं अिसलिये आप ख़ालिस हिन्दुस्तानीमें भी अच्छी तरह लिख सकते हैं। आपके अफ़सानोंका मजमूआ 'मुहब्बत और नफ़रत' बहुत मशहूर हैं।

कृष्णचन्द्र

आप तरक्क़ीपसंद लेखक हैं। आपने बहुत थोड़े अर्सेमें बड़ी शुहरत पायी है। आपकी कहानियाँ वास्तविकताका आधार लिये हुअे होती हैं। जो शमा प्रेमचन्दने रोशन की थी अुसकी लौ कृष्णचन्द्रके हाथों बढ़ती रहेगी अैसी अुम्मीद की जाती है। आपकी कहानियोंका अेक संग्रह 'ज़िन्दगीके मोड़पर' अभी अभी शाया हुआ है। हिन्दुस्तानकी अलग अलग ज़बानोंसे प्रगतिशील कहानियोंका अुर्दूमें तर्जुमा करके अुनका अेक संग्रह 'नये अफ़साने' के नामसे आपने संपादित किया है।

—(×)—

अुपेन्द्रनाथ अश्क

यह अेक नौजवान लेखक हैं जिन्होंने बहुत थोड़े अर्सेमें अपनी कलाकारीका सिक्का जमाया है। महाशय सुदर्शनकी भाँति यह भी प्रेमचन्दकी लेखनशैलीका अनुकरण करते हैं। प्लाटके विचारसे अिनकी कहानियाँ

मनोरंजक होती हैं। अिनकी कहानियोंके कअी संग्रह छप चुके हैं। अिन्होंने 'अुर्दू काव्यकी नयी धारा' नामकी अेक किताब हिन्दीमें लिखी है जिसमें आजकलकी अुर्दूकी आसान कविता और अुसके लिखनेवालोंका थोड़ेमें परिचय कराया गया है।

नियाज फतहपूरी

लखनअूके प्रसिद्ध मासिक पत्र 'निगार' के आप सम्पादक हैं। अरबी, फ़ारसी और तुरकी ज़बानें जानते हैं। आपकी भाषा कृत्रिम और अरबी शब्दोंसे भरी होती है। 'क्योपिड और सािअकी' और 'शायरका अंजाम' आपके दो मशहूर अफ़साने हैं। आपके अफ़सानोंके दो मजमूअे शाया हो चुके हैं जिनके नाम हैं 'निगारिस्तान' और 'ख़यालिस्तान'। आपकी दूसरी किताबोंके नाम हैं, 'तारीख अुद्दौलतीन' 'गहवारा अे तमद्दुन' 'फ़रासत अुलीद' 'अलमस्ला अल शरक़िया' 'जज्बाते भाषा' 'तरग़ीबाते जिन्सी' वग़ैरह।

—०—

अिनके अलावा नीचे लिखे लेखक भी बहुत मशहूर हैं:—सज्जाद हैदर 'यलदरम', सुलतान हैदर 'जोश', 'मजनूँ', जलील क़िदवाअी, आज़म करेलवी, अहमद शुजा, अिम्तियाज़ अली 'ताज', कृष्णप्रसाद क़ौल, रणवीरसिंह 'वीर' वग़ैरह।

---

२ हास्यरस [मज़ाहिया अफसाने]

दीगर हिन्दुस्तानी ज़बानोंकी तरह अुर्दूमें भी शुरू शुरूमें अूँचे दर्जेके हास्यरसकी किताबें बहुत कम पायी जाती थीं। हास्यरसके नामपर भद्दा परिहास ही पाया जाता था और पाठकोंको अुसीमें मजा आता था, लेकिन जैसे जैसे अंग्रेज़ी साहित्यका अध्ययन बढ़ता गया वैसे वैसे अूँचे दर्जेके हास्यरसकी कल्पना लोगोंको आती गयी और हिन्दुस्तानी ज़बानोंमें सुसंस्कृत परिहास आने लगा। आज अुर्दूमें जो हास्यरस दिखाअी देता है वह बहुत

कुछ अूँचे दर्जेका है; फिर भी मराठी या बँगलाके मुक़ाबलेमें वह बहुत ही निचले दर्जेका समझा जायेगा। हास्यरस लेखकोंकी संख्या अुर्दूमें बहुत कम है। अुनमेंसे कुछ लेखक ये हैं:—

पितरस

श्री अहमदशाह बुख़ारी 'पितरस' गवर्मेंट कालेज लाहौरके प्राध्यापक हैं। अंग्रेज़ी अदबके एक अच्छे हिन्दुस्तानी अदीब होनेके साथ आपको अपने मुल्क और ज़बानसे भी दिलचस्पी है। आपके अफ़सानोंका मक़सद सिर्फ़ हँसना और हँसाना नहीं बल्कि अुनके लिखनेमें वह अिसलाहका कोअी नुक़्ता मद्देनज़र रखते हैं। आपका परिहास भद्दा नहीं बल्कि अंग्रेज़ीका असर लिये हुअे अूँचे दर्जेका होता है। किसीकी कमज़ोरीपर आप अपने अफ़सानोंकी बुनियाद नहीं रखना चाहते। आप बहुत कम लिखते हैं मगर जो लिखते हैं वह वास्तविकताका आधार लिया हुआ होता है। आपकी ज़बान साफ़ और सादा होती है मगर आप बीच बीचमें पंजाबी मुहावरोंका अिस्तेमाल करके अुसे मुश्किल भी बना देते हैं। आपके लेखों और कहानियोंका अेक संग्रह 'पितरसके मज़ामीन' के नामसे छप चुका है।

मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताअी

अुर्दू के हास्यरस लेखकोंमें सबसे ज़्यादा मशहूर मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताअी ही थे। अिन्होंने जब पहले पहल मज़ाहिया मज़मून या अफ़साने लिखने शुरू किये तब अुनके सामने अपने रस्मोरिवाजोंके सुधारका मक़सद था। अिन्होंने 'कुरान और परदा' जैसी संजीदा (गंभीर) किताबें भी लिखी हैं। 'कमजोरी' वग़ैरह दर्दनाक अफ़साने भी अिन्होंने लिखे हैं मगर अुनकी शुहरत 'शरीर बीबी' और 'कोलतार' अिन दो हास्य-रसकी किताबोंसे बहुत ज़्यादा फैली है। मिर्ज़ा साहब अिस्लामी रस्मोरिवाजोंमें सुधार करनेके हामी थे अिसलिअे कट्टर मुसलमान अिनका विरोध करते थे। अभी कुछ रोज़ हुअे अिनका अिन्तकाल हुआ।

शौकत थानवी

आजकलके हास्यरस लेखकोंमें शौकत थानवी ही सबसे ज़्यादा मशहूर हैं। वैसे आपकी ग़ज़लोंका अेक मजमूआ 'गहरिस्तान' नामसे शाया हुआ है मगर आपकी शुहरत खासकर मज़ाहनिगारी (परिहास) और तबस्सुमात (हास्यरस) के कारण ही हुआी है। आप अफसाने बहुत कम लिखते हैं। आपका लेख रोज़ाना ज़िन्दगी और अुसकी मामूली बातों पर अेक लतीफ (मजेदार) मजमून होता है। आपने मौलवी मुहम्मद अिस्माअिल की रीडरोंमेंसे कविताओंकी पहली पंक्तियाँ लेकर अुनपर अच्छी कहानियाँ लिखी हैं, जैसे 'सुनाअूँ तुम्हें बात अिक रात की' या 'लाड़ला बेटा था अिक माँ-बाप का' वगैरह। आपकी हास्यरसकी किताबोंमेंसे ये बहुत मशहूर हैं:—'मौजे तबस्सुम' 'सैलाबे तबस्सुम' 'तूफ़ाने तबस्सुम' 'बहरे तबस्सुम' वगैरह। आज-कल आप लखनअूसे 'सरपंच' नामका अेक हफ़्तावाराना अखबार निका-लते हैं।

अिन तीन लेखकोंके अलावा अुर्दूमें नीचे लिखे लेखक भी हास्यरस लिखनेके लिये मशहूर हैं:—मिर्जा फरहतुल्ला बेग, रशीद अहमद सिद्दीक़ी, मुल्ला रमूज़ी वगैरह।

३] गम्भीर विषय (मक़ालात व सहाफ़त)

अुर्दू जबानकी पैदाअिश ही कुछ अैसे कारणोंसे हुअी थी कि शुरूके जमानेमें अुसमें गंभीर विषय आना कुछ नामुमकिन-सा था। यानी जो ज़बान बाज़ार और व्यौपारके मामूली काम चलानेके हेतुसे पैदा हुअी हो और बाद में जिसमें दिलबहलावके लिअे शेर शायरी, क़िस्से व कहानियाँ लिखी जाने लगी हों अुसमें फ़िलसफ़ाका लिट्रेचर कहाँ से आये? कुछ किताबें दूसरी जबानोंसे तर्जुमा होकर जरूर आयी थीं मगर अुनकी तादाद बहुत कम थी। अंग्रेज़ी जबानके परिचयसे अुर्दूवाले यह कमी महसूस करने लगे और तबसे अुर्दूमें अच्छी अच्छी चर्चात्मक दार्शनिक किताबोंके तर्जुमें होने लगे। अिन तर्जुमा करनेवालोंमें मौलाना अब्दुल माजिद दरयाबादीका नाम विशेष अुल्लेखनीय

है। अिन्होंने निहायत-जाँ फ़िशानी और क़ाबिलियतके साथ अिस विषयपर मुस्तक़िल किताबें भी लिखीं और कारआमद किताबोंका ग़ैरजबानोंसे अुर्दूमें तर्जुमा भी किया। आपकी मशहूर किताबें ये हैं:—'फ़िलसफ़ाअे जज़्बात' 'फ़िलसफ़ाअे अजतमाअ' 'मकालमाते बरकले' वग़ैरह। अिन्होंने तर्जुमेकी जबान बड़ी साफ और बामुहावरा रखी है। वैसे अिस विषयकी किताबोंमें अरबी और फ़ारसीके मोटे मोटे अलफाज तो आयेंगे ही, मगर तनक़ीद (टीका), और मामूली मजमूनोंकी जबान बड़ी आसान और रोजमर्राकी होती है। कुछ पुराने लफ़्ज जैसे 'तअीं' 'ओर' 'पस' वग़ैरह का भी यह अिस्तेमाल कर जाते हैं।

मौलाना साहबके अलावा अुर्दूमें चर्चात्मक और दार्शनिक विषयोंपर लिखनेवाले लेखक ये हैं:—'मौलाना सैयद सुलेमान नद्वी,' 'ख़्वाजा अली हसन अुर्फ़ हसन निज़ामी,' 'मौलाना अबुल कलाम आज़ाद,' 'अदीबुलमुल्क नसीर हुसेन ख़याल,' 'जफ़र अली खाँ,' 'मसअूद हसन,' 'डाक्टर मुही-अुद्दीन जोर,' वग़ैरह। अिनमेंसे कुछका परिचय हम थोड़ेमें देते हैं।

मौलाना सैयद सुलेमान नद्वी

मौलाना शिब्ली मरहूमकी 'शिब्ली अेकेडमी' (दारुलमुसन्निफ़ीन) के ये सदर हैं और बड़ी खूबीसे अिसका कारोबार चलाते हैं। यह शिब्लीके सही जानशीन (मित्र) साबित हुअे हैं। शिब्लीकी तरह अिनको भी तारीख़ से ख़ास शग़फ़ है। अिनकी अिबारतमें अदबियत और पुख़्तगीके अलावा अिलिमयतका भी जख़ीरा रहता है। नाहक़ अरबी-फ़ारसीके मोटे लफ़्ज़ोंका अिस्तेमाल नहीं करते। ये अरबी-फ़ारसीके जबर्दस्त आलिम हैं मगर अुर्दूकी नस्रमें मौलवियाना रंग कभी नहीं पैदा होता और न मजमूनमें कभी खुश्की आती है। अुर्दूके अव्वल दर्जेके वक्ताओंमें से ये अेक हैं। अिनका रिसाला 'मआर्रिफ़' अदब व क़ौमकी क़ाबिले क़द्र ख़िदमत करता आया है और अपने अिल्मी मजमूनोंके अैतबारसे मुल्कमें अेक बलन्द पाया रिसाला समझा जाता है। क़ौमी जबान हिन्दुस्तानीके ये बड़े हामी हैं।

—x—

मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद'

आज सारा हिन्दुस्तान मौलाना आज़ाद साहबको ज़्यादातर कांग्रेसके प्रेसिडेण्टकी ही हैसियतसे पहचानता है। बहुत कम लोग जानते होंगे कि मौलाना साहब अुर्दू साहित्यमें बहुत आला दर्जा रखते हैं। मौलाना साहबने कुराने शरीफ़का अध्ययन अितना गहरा किया है कि अुनकी हर तहरीर (लेख) और तक़रीर (भाषण) में कहीं न कहीं अुसका हवाला ज़रूर दिया जाता है। अिन्होंने कुरानका जो अुर्दू तर्जुमा किया है वह मक़बूले आमोख़ास हो गया है। अिस तर्जुमेके अलावा अिनकी कोअी मुस्तक़िल अदबी तसनीफ़ तो मालूम नहीं होती मगर अपने 'अल् हिलाल' और 'अल् बलाग़' अिन अख़बारोंमें अिन्होंने मजहबी, समाजी और राज-काजी विषयोंपर जो मजमून लिखे हैं अुनके कअी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अुनके मख़सूस अन्दाजे तहरीरने मौलाना आजादको अुर्दूके बेहतरीन अिन्शापरन्दाजोंकी सफ़में जगह दिला दी है। मौलानाकी तक़रीरकी तरह तहरीर भी अेक सहर (जादू) होता है कि जिसको अव्वलसे आख़िर तक बग़ैर पढ़े छोड़नेको जी नहीं चाहता। लफ़्जोंकी बन्दिश अैसी है कि अगर अेक लफ़्जको अुसकी जगहसे हटाकर दूसरी जगह रखना चाहें तो तमाम अिबारतके बेलुत्फ़ हो जानेका अन्देशा रहता है। अलफ़ाजका अिन्तख़ाब ज़्यादातर अरबी और फ़ारसीके जख़ीरेसे होता है मगर बड़े मीठे और दिलकश लफ़्जोंको चुनते हैं। 'जोश' और 'अिक़बाल' की तरह आजादकी तहरीरमें आमतौरसे जोश और पयामे अमल होता है। अिस वक़्त फ़सीह और बलीग अुर्दूमें गुफ़्तगू करनेवाला आज़ाद साहबसे बेहतर शायद ही कोअी होगा। जबानपर ऐसा अधिकार है कि सुननेवालोंको चाहे जब हँसा सकते हैं चाहे जब रुला सकते हैं और चाहे जब नादमुग्ध हिरनकी भाँति मुग्ध कर सकते हैं। अिसलिये आजाद साहबकी तक़रीर सबके लिये बड़े आकर्षणकी चीज बन गयी है। 'तजक्रिरा' नामसे अिन्होंने अपनी आत्म-कथा लिखी है जिसमें अिन्होंने जिन्दगीके शुरू शुरूके हालात बड़ी काव्यमय भाषामें बयान किये हैं। देशभक्तिके गुनाहकी वजहसे आजाद

साहबको अपनी जिन्दगीके बेशक़ीमत साल जेलोंमें गुजारने पड़े हैं। अुन्होंने अिस मजबूरन दिये गये आरामका अुपयोग लिखने-पढ़नेमें करके अुर्दू जबानपर बहुत बड़ा अेहसान किया है।

—×—

सूची

ख

ट

ड

त

प

फ

भूल सुधार

पृष्ठ १३२ के बाद अेक फार्मके पृष्ठोंके नम्बर गलत छप गये हैं लेकिन अुससे मज़मूनमें कोअी गड़बड़ी पैदा नहीं होती। १२९, १३०, १३१ और १३२ नम्बर दोबारा छप गये हैं। चुनांचे पृष्ठ १३२ के बाद जो १२६–१३२ नम्बर आये हैं अुनपर अ का निशान लगाया जाय ताकि सूचीका अुपयोग करते वक्त कोअी दिक़्क़त न हो। यानी आठ पृष्ठोंके नंबर अिस तरह होंगे:—१२९, १३०, १३१, १३२, १२९ अ, १३० अ, १३१ अ, १३२ अ।

३७०

भूल सुधार

पृष्ठ	लाअिन	गलत	सही
५०	१० (अूपरसे)	साक़ी	सारी
६३	३ (नीचेसे)	सम्बन्द्ध	सम्बद्ध
६६	८ (अूपरसे)	दिलकश	दिलकश है।
१०६	३ (अूपरसे)	लिखनेमें	पढ़नेमें
१२०	७ (नीचेसे)	तरह भी	तरह नस्रमें भी
१२२	८ (,,)	अने केसरी	अने क़ैसरी
१२६	१४ (,,)	'रशाद	'अिरशाद
१३९	४ (अूपरसे)	ज़ख्ख़ी	ज़ख़्मी
१३९	२ (नीचेसे)	राशिक	राशिद
१६१	१२ (,,)	फरइतुल्ला	फरहतुल्ला
१६२	४ (अूपरसे)	बस्क़ले	बरकले